सन्त तुकाराम

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से 15
भूमिका 17
जीवन-वृत्तान्त 23
सतगुरु की खोज 28
नाम का मिलना, रूहानी कमाई और प्रभु-दर्शन की लालसा 30
आत्मा का अन्धकारमय समय 36
प्रभु का साक्षात्कार 43
प्रभु-प्राप्ति के अनन्तर तुकाराम का जीवन-लक्ष्य 47
तुकाराम के मार्ग में बाधाएँ और उन पर अत्याचार 48
तुकाराम का व्यक्तित्व 52
तुकाराम की कविताएँ 54
उपदेश 57
मनुष्य-जन्म का महत्त्व 57
धर्म तथा भक्ति का दिखावा, रीति-रिवाज तथा कर्मकाण्ड 59
सतगुरु से नाम का मिलना 61
शिष्य से अपेक्षित योग्यताएँ और उसके कर्तव्य 62
सच्चा गुरु 64
नाम 67
नाम का अभ्यास 69
सुमिरन 70
ध्यान और दर्शन 72

भजन 73
जीते-जी मरना 74
मन 75
दूषित भावनाएँ 77
चिन्ता, आलस्य, निद्रा और अधिक खाना 79
नैतिक आचरण 81
सत्संग और भक्तों की संगति 82
सारांश 83
संकलित अभंग 85
जो चाहे, हक़ है उसको 86
मन! जागते क्यों नहीं रहते 87
चाह मिटी, मोह से पिण्ड छूटा 88
मुझे नहीं कोई अन्तर पड़ता 89
तीर्थों में वह महातीर्थ है 90
उससे क्या कुछ खो देगा तू 92
सन्तोष हो जो मन में 93
थोथी बातें 94
पूँजी साथ यह जाएगी 95
आगे भी जुते रहोगे 96
धर्म कमाया नाहीं 97
सो दौड़, बचा अब मुझको 98
रेत दिखे जल, मृग जल समझे 99
भला तुम्हारा इसमें ही है 100
नहिं काल का चक्र चलेगा 101
हर साधना का यही है सार 102
मिले यदि सन्त की संगति उनको 103
नासमझ हम मनुष्य भी ऐसे 104
जलने में नहीं लगेगा पल भर 105

निरा भौंकना ही वह होगी 106
फिर भी सब कुछ प्राप्त किया 107
पैड़ी-पैड़ी चढ़ जाएँ 108
तुका त्यों तड़पे तुझे न पाकर 109
प्रतिदिन कोई अभ्यास करे तो 110
बातें केवल, कोई सार नहीं है 111
तब तक, जब तक नहीं जागा 112
छाया देखे सुख नहीं मिलता 113
बाहर मृदु, अन्दर भी वैसा 114
यही पथ सन्तों ने अपनाया है 115
चलता है एक ही सिक्का 118
भक्ति की डौंड़ी पीटने आया 119
वही बताए, तुका है कैसा 120
अन्य उपाय न कलि में चलता 121
तुका का जीना ही किस काम का 122
कहने को जब नहीं कुछ 123
मन शान्त रहे तो 124
ब्रह्मा का पद तुच्छ वे मानें 125
अब हूँ तेरी शरण में आया 126
संकल्प हो गया पूरा 128
नर-तन को आदर से देखो 129
कर स्वीकार यह सेवा मेरी 130
यदि प्रेम हो निर्मल 131
केवल परोपकार हित 132
तड़प है मेरी बिलकुल वैसी 133
सँभाल पिता को करनी होगी 134
जाल में फँसा, छुड़ाओ भगवन् 135
धन्य-धन्य तन इससे होता 137

छोड़ दो सांसारिक तृष्णाएँ 138
सन्त के संग से 139
है भोग के लिये अब जगह कहाँ? 140
तुच्छ से तुच्छ सदा बने रहना 141
मौत भूल गए, कारण है क्या 142
लोक-कल्याण हित जग में आते 143
नयनों में वह रूप बसा था 144
नाद की जब मस्ती 145
क्या कर लिया जो की तीर्थ-यात्रा 146
दाता का भण्डार अमित है 147
तर न सकें जप बिन भव-सागर 148
चोर घर में ही छिपा है होता 149
सँभलो रे! कुछ सँभलो रे अब! 150
पृथ्वी पर कोई तुल्य न उसके 151
मेरा भी है प्रभु, मेरा भी 152
चींटी से लेकर राजा तक 152
मेरे साथ धूर्तता तेरी 153
समान हो गए ये दोनों तट 154
वस्तुतः यह प्रताप तुम्हारा 155
जहाँ भी जाऊँ साथ तू मेरे 156
प्रवाह कर्मों का रोक दिया अपने 157
नीच, दुष्ट मैं सबसे बढ़कर 158
सन्तों के चरणों में रहकर 159
असंख्य भक्तों को तारा प्रभु ने 160
नहीं उपेक्षा होगी मेरी 161
सार है राम के नाम की भक्ति 162
हुई अवस्था यह 163
कथा त्रिवेणी - संगम है 164

नाम है घर में 165
साधन सबसे सरल यही है 166
मुक्ति हेतु आयास क्यों इतना 167
दो एक हुईं, अब अलग कहाँ 168
सम्मान एक-सा नहीं करो तुम 168
तेरे प्रेम ने मन को धो डाला 169
रे मन! ऐसी याद न देना 169
तेरे चरणों का पावन जल 170
दोनों दो अब रहे नहीं हैं 170
जल्दी आ, अब जल्दी आ जा 171
तुझ बिन सूनी सभी दिशाएँ 171
अपनी मृत्यु का जब हुआ अनुभव 172
निधि परमार्थ की पाए सोई 173
मौत जल्द ही आ जाएगी 174
फ़क़ीर बना दे 174
सब कर्म हैं प्रभु के लेखे अब 175
समझ लो, मुझको प्रभु नचाता 176
सुगन्ध सार, मोल मिलता जिसका 177
वाणी में रस अमृत का ही 178
नाम जपो तो 179
तू मुझमें, मैं तुझ माहीं 180
व्यर्थ गँवाते अपना जीवन 181
कर लो सीढ़ी राम-नाम को 182
नाला नाला नहीं है होता 183
देर करेगा, चख न सकेगा 184
याचना एक यही है 185
आ बसता प्रभु जिसके अन्दर 186
मत समझो तुम 187

जैसे गौ का ध्यान बछड़े में 188
माँगूँ ना मैं कभी भी कुछ भी 189
डुबकी लगाओ मन! हरि-चरणों में 190
माँग लिया मन मेरा मुझसे 191
जीव जो तुझमें मिल जाता है 192
हो जाए प्रभुमय सब सृष्टि 193
कृपया मनोरथ कर दे पूरन 194
नाम का मुख में अखण्ड सुमिरन 195
घोर कष्ट भोगेगा पापी 196
जाल से मुझे छुड़ाओ भगवन्! 197
जग-प्रपंच में नहीं फँसो तुम 198
वही हूँ मैं 199
हिसाब बराबर कर अब जल्दी 200
एकरूप नित्य निर्मल प्रभु से 201
शब्द सुनाकर प्रभु ने 202
ज्ञान की बातें काहे करते 203
सतगुरु के चरणों में मैंने 204
महती कृपा यह हुई जब उनकी 205
कीर्तन मत छोड़ना तुम तब भी 205
छूटेगा नहीं किसी तरह भी 206
बुद्धि यह उस तक पहुँचे कैसे 207
चरण-धूलि जब सन्त की मिलती 208
मेरे भी तो तुम्हीं एक हो 209
मैं भी शरण तुम्हारी आया 210
भक्ति-विहीन अभागा जानो 211
उड़ो, सहायता को आ जाओ 212
गुरु के बिना कभी ना पाएँ 213
सच्ची नौका 213

हरि रहता तन के अन्दर 214
दान वे ऐसा देते 215
मगर अभिन्न सतगुरु को पाएँ 216
वैद्य-नाथ से मिल लिया जब 217
प्रभु अगम्य जहाँ है रहता 218
प्रभु तब भी था 220
सतगुरु का ज्योतिर्मय रूप 221
तुम देखो अन्दर 222
सोहं पार 223
ज्ञान-चक्षु खोल देखो उसको 224
जो यह सत्य समझ जाते हैं 225
विश्व रहेगा क्या? यह बताओ 226
क्या मैं आपको भेंट करूँ अब 227
शब्द को ही जानो प्रभु 228
ये सिद्धान्त तो 229
दिखने लग जाएँ ये लक्षण जब 230
आत्म-हिताय यह सब करने का 231
जब तुमको गले लगा लेगा 232
वही रास्ता अपनाएँगे 233
धन्य-धन्य है उसका जीना 234
प्रेम उमड़ हृदय में आए 235
उनसे कौन बड़ा दातार 235
लेते-देते प्रेम का सुख वे 236
उसी में मिलता यह अद्भुत गुण 237
कई घरों में रह जब आए 238
अभ्यास देता है पूर्ण सफलता 239
पर रहे तेरे चरणों से प्यार 240
परमार्थी की रहनी 241

भगवान् है जिसका रक्षक 242
प्रभु को बहुत अच्छा है लगता 243
गोप्य है धन यह 244
मरकर जो जीता वह ऐसा हो जाता 245
हर कष्ट का करे निवारण 246
कमी किस चीज़ की है हो सकती 247
तेरी चिन्ता नहीं उसे क्या? 248
डाल दो भार प्रभु पर चिन्ता का 249
चरण-कमल कहीं भूल न जाएँ 250
उसकी सेवा भी कोई सेवा 251
वह मिल जाए यदि इसको 252
धन्य आज का दिन, यह स्वर्णिम दिन! 253
मत समझो कि तुम हो कर्ता 254
नाम-सा सरल न साधन जग में 255
लाज रख ले अपने नामों की 256
कथनी जैसी करनी जिसकी 257
सन्दर्भ-ग्रन्थ 258
अभंग-अनुक्रमणिका 260
हमारे प्रकाशन 263

भूमिका

तेरहवीं शताब्दी में सन्त ज्ञानदेव के जन्म लेने और 1681 ई. में (सन्त तुकाराम की मृत्यु के 31 वर्ष बाद) समर्थ रामदास जी के संसार से सिधारने के बीच की चार शताब्दियों में महाराष्ट्र को अनेक तेजस्वी सन्तों के प्रकट होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने प्रभावशाली उपदेश द्वारा उन्होंने लोगों को दृढ़ निश्चय, निर्भीकता, नम्रता और दया के साथ जीवन बिताने के लिये प्रेरित किया। उन्होंने सोए हुए जीवों को जगाया और उन्हें श्रद्धा तथा भक्ति के द्वारा प्रभु को पाने की प्रेरणा दी।

उन शताब्दियों में मानो आकाश से अमृत-कणों की वर्षा हो रही थी, जिसके फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्णों तथा वर्गों में कम से कम पचास सन्तों ने जन्म लिया। अपनी आजीविका कमाने के लिये उन्होंने भिन्न-भिन्न व्यवसाय अपनाए। उदाहरण के लिये, ज्ञानदेव, एकनाथ तथा रामदास, पुरोहित वर्ग के थे, नामदेव दर्ज़ी थे, नरहरि सोनार, गोरा कुम्हार, सावता माली, सेना नाई, चोखा मेला सफ़ाई-कर्मचारी, जनाबाई सेविका और जोगा तेली। तुकाराम जाति से कुणबी थे और पेशे से दुकानदार। ये सभी महात्मा स्वयं अपनी आजीविका कमाते थे, इसलिये ग़रीब लोगों के अन्ध-विश्वास का लाभ उठानेवाले अनेक पुजारियों-पुरोहितों तथा धर्मोपदेशकों की तरह समाज पर किसी प्रकार का बोझ नहीं थे।

महाराष्ट्र के इन सन्तों ने समूचे तौर पर एक विपुल आध्यात्मिक साहित्य की रचना की जो आज भी सारी मानव-जाति के लिये, हर वर्ण, पन्थ, जाति, राष्ट्र तथा धर्म के लोगों के लिये, प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

उक्त चार शताब्दियाँ महाराष्ट्र तथा भारत के अन्य भागों के इतिहास में भी भक्ति-काल के रूप में विशेष महत्त्व का स्थान रखती हैं। भक्ति-मार्ग

प्रभु की प्राप्ति के लिये जिज्ञासुओं को प्रभु को पूर्ण आत्म-समर्पण तथा उसकी निष्काम भक्ति की शिक्षा देता है। जैसा कि प्रोफ़ेसर एस. जी. तुळपुळे ने कहा है, इसने देश के सामने लोकतान्त्रिक रहस्यवाद का (सब मनुष्यों को समान माननेवाली आध्यात्मिकता का) आदर्श रखा।

सन्तों तथा अध्यात्म-विद्या के गुरुओं के द्वार, जाति तथा सामाजिक स्तर का भेद-भाव किये बिना, जिज्ञासुओं के लिये सदा खुले रहते थे। वहाँ जो कोई भी आता था, उसका भाई की तरह, बल्कि इससे भी अधिक, एक सन्त की तरह स्वागत किया जाता था और उसे 'सन्त' कहकर ही सम्बोधित किया जाता था (द डिवाइन नेम, पृ. 215)। सन्त-महात्मा ऊँची आत्माएँ होते हैं और अपनी सहज नम्रता के कारण जिज्ञासुओं के लिये इतने उदात्त सम्बोधन का प्रयोग वे इसलिये करते हैं कि वे जानते हैं कि उनमें से प्रत्येक, उन्हीं की तरह एक सन्त बनने की क्षमता रखता है। सिक्खों की धर्म-पुस्तक आदि ग्रन्थ में भी गुरु साहिबान ने जिज्ञासुओं को 'सन्तो' तथा 'साधो' कहकर सम्बोधित किया है।

मुम्बई से 480 किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक नगर पंढरपूर महाराष्ट्र में भक्ति-मार्ग का केन्द्र माना गया है। यहाँ यह मार्ग 'भागवत धर्म' के नाम से जाना जाता है और इसके बारे में कहा गया है कि यह एक ऐसी धार्मिक जीवन-पद्धति है जो भक्ति को परमात्मा और जीवात्मा की एकता का अनुभव प्राप्त करने का साधन मानती है (द सेंट-पोइट्स ऑफ़ महाराष्ट्र, पृ. 158)। पंढरपूर में भगवान् विठ्ठल का एक मन्दिर है।

सन्तों के अभंगों से, जो भक्तिपरक कविताएँ हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि 'विठ्ठल' शब्द का अभिप्राय परमेश्वर से है। परमात्मा के प्रति अपने गहरे प्रेम के कारण सन्तों ने उसे विठ्ठल, पंढरीनाथ, पाण्डुरंग, राम, कृष्ण, हरि आदि अनेक नामों से पुकारा है। उक्त मन्दिर में प्रमुख धार्मिक क्रियाएँ नाम-संकीर्तन (आध्यात्मिक प्रवचन), कीर्तन (एकल अथवा सामूहिक गान) तथा ध्यान धरना थीं। नाम से ही पता चल जाता है कि 'नाम-संकीर्तन' का अर्थ प्रभु के नाम की महिमा का गान करना है। सन्तों के प्रवचनों का मुख्य विषय प्रभु के नाम को याद करके उसका सुमिरन करने का महत्त्व ही होता था।

कीर्तन में सन्तों के प्रभु से वियोग की तीव्र पीड़ा और उससे मिलाप के परम आनन्द का वर्णन करनेवाले गीत गाए जाते थे। कानों को मीठे लगनेवाले तथा आध्यात्मिक विचारों से ओतप्रोत ये गीत, जिनमें लौकिक तथा पारमार्थिक कार्यों में सन्तुलन स्थापित करने पर बल दिया जाता था, लोगों को बहुत अच्छे लगते थे, क्योंकि उनकी मातृ-भाषा मराठी में लिखे होने के कारण ये सहज ही उनकी समझ में आ जाते थे, जबकि धर्म-शास्त्र संस्कृत में रचित होने के कारण उनकी समझ से परे थे। जैसा कि प्रोफ़ेसर बेलसरे का कहना है, हिन्दुओं की संस्कृति मूलत: 'आदर्शवादी' है जिसका इन्द्रियों की पहुँच से परे के एक आध्यात्मिक सत्य में विश्वास है। परन्तु इस संस्कृति के अधिकांश अनुयायी आध्यात्मिक तथा सांसारिक कार्यों के बीच ताल-मेल में भी विश्वास रखते हैं। वे इन्द्रिय-सुखों को पूरी तरह त्याग देने के पक्ष में नहीं हैं, अपितु मनुष्य-जीवन में इनका एक उचित स्थान स्वीकार करते हैं (तुकाराम, पृ.1)। तुकाराम के निम्नलिखित अभंग में हम आध्यात्मिकता तथा सांसारिकता का वह सुन्दर सम्मिश्रण देख सकते हैं जिसकी सन्तों ने हमें शिक्षा दी है:

शरीरा सुख नेदावा भोग। न द्यावें दु:ख न करीं त्याग॥
नव्हे वोखटें ना चांग। तुका म्हणे वेग करीं हरिभजनीं॥

गाथा 660

अर्थात्, शरीर को न अधिक विषयभोग में लगाकर सुख दो और न सबकुछ त्यागकर दु:ख। शरीर अपने आप में न अच्छा है, न बुरा। तुकाराम कहते हैं कि इसे अच्छा बनाना है तो जल्दी से प्रभु की भक्ति में लग जाओ।

ऊपर के अनुच्छेदों में और आगे भी सारी पुस्तक में 'सन्त' शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया गया है। सन्त वह व्यक्ति होता है जिसने परमात्मा को पा लिया होता है, जिसने आत्म-ज्ञान की सबसे ऊँची अवस्था प्राप्त कर ली होती है। वह परमात्मा का आमने-सामने दर्शन करता है तथा निर्मल अलौकिक आनन्द में मग्न रहता है। परमात्मा को वह इतनी अच्छी तरह जानता है कि स्वयं ही परमात्मा बन गया होता है। सन्त का जीवन सर्वथा निर्मल होता है। वह स्वयं अपना स्वामी और प्रभु के धाम का वासी

होता है। वह एक भिन्न प्रकार का योद्धा होता है। उसने मन के कहे अनुसार चलने की इच्छा तथा प्रभु की आज्ञा के आगे नतमस्तक होने की इच्छा के बीच होनेवाले कठोर आन्तरिक संघर्ष का सामना किया होता है। साधक सन्त तब ही बनता है जब वह यह युद्ध जीत लेता है। सन्त के हृदय में प्रभु की ज्योति अर्थात् दिव्य ज्ञान का दीपक सदा प्रकाशमान रहता है। दिव्य ज्ञान से वह अपने और विश्व के अन्दर काम कर रही प्रभु की योजना तथा उसका उद्देश्य समझ लेता है। उस योजना में वह ख़ुशी से सहयोग देता है और फलस्वरूप उसे अपने अन्दर और बाहर प्रभु की उपस्थिति का अनुभव होता है। इसलिये जीवन में आनेवाले उतार-चढ़ाव को, दुःख-सुख को, वह असाधारण शान्ति के साथ स्वीकार करता है। जीवन में आनेवाली आम विपत्तियों से वह विचलित नहीं होता क्योंकि वह हर घटना के पीछे प्रभु का हाथ कार्यरत देखता है। पवित्रता, निर्भयता और प्राणीमात्र के लिये प्रेम सन्त के जीवन की पहचान होते हैं। प्रभु के साथ सम्पर्क से उसने अपार शक्ति प्राप्त कर ली होती है और जीवन में शान्ति-लाभ के लिये परिश्रम कर रहे स्त्री-पुरुषों को वह भरपूर मात्रा में शक्ति प्रदान करता है। इसलिये वह इस दुःख-भरे संसार के लिये सदा प्रेरणा तथा सान्त्वना का स्रोत होता है। उसकी परोपकारशीलता की कोई सीमा नहीं होती। संकीर्णता और कमीनापन उसे छू भी नहीं गए होते। वह प्रत्येक अर्थ में एक महान् आत्मा होता है। वह मानव-जाति के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये हाथ में ज्ञान की मशाल लेकर आया एक प्रबुद्ध व्यक्ति होता है जो लोगों को बड़ी नरमी और समझदारी के साथ प्रभु-प्राप्ति का मार्ग दिखाता है।

दुर्भाग्य की बात है कि अपने जीवन-काल में सन्तों को अक्सर तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। दुष्ट लोग उनके साथ छल-कपट करते हैं और उन्हें तरह-तरह के कष्ट देते हैं। पर यह सबकुछ होते हुए भी उन महापुरुषों का परमात्मा में विश्वास और आन्तरिक शान्ति बनी रहती है। बाहर से चाहे वे साधारण मनुष्यों जैसे दिखते हैं, परन्तु अन्दर से वे परमात्मा से एक होते हैं। सारांश यह कि सन्त पृथ्वी पर देहधारी परमात्मा होते हैं (तुकाराम, पृ. 2)।

तुकाराम ऐसे ही सन्त थे। मराठी-भाषी सभी सन्तों में, जिन्होंने नर्मदा नदी के दक्षिण के लोगों और उनकी संस्कृति पर अमिट छाप छोड़ी है, तुकाराम को लोकप्रियता की दृष्टि से सबसे बड़ा तथा निश्चय ही सबसे अधिक विस्तृत क्षेत्र पर प्रभाव डालनेवाला माना जाता है (साम्ज़ ऑफ़ मराठा सेंट्स, पृ. 18)। सत्रहवीं शताब्दी के इस प्रसिद्ध सन्त के जीवन और उपदेश, इनके व्यक्तित्व और साहित्य का महाराष्ट्र के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है और आज साढ़े तीन सौ से अधिक वर्षों के बाद भी इनके भक्तिपूर्ण अभंग महाराष्ट्र के घर-घर में प्रेम और उत्साह के साथ गाए जाते हैं।

जीवन-वृत्तान्त

इस बात पर विद्वान् साधारणतया सहमत हैं कि तुकाराम का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में पूना नगर के निकट देहू नामक ग्राम में सन् 1598 ई. में हुआ। उनका वंश-परम्परा से चला आ रहा मकान अभी तक देहू में मौजूद है।

तुकाराम के सबसे पुराने ज्ञात पूर्वज का नाम विश्वम्भर था जो सन्त नामदेव के समकालीन थे। तुकाराम के पिता का नाम बोल्होबा तथा माता का नाम कनकाई था। बोल्होबा एक गाँव के मुखिया थे और इसलिये उनके पास खेती करने के लिये बहुत-सी बढ़िया ज़मीन थी। अपनी दुकान पर वे अपनी ही ज़मीन से पैदा हुआ अनाज तथा अन्य वस्तुएँ बेचते थे और उस आमदनी से ही अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। पर तुकाराम के समय में अनाज बेचनेवालों को नीच जाति का माना जाता था और इसलिये पढ़ा-लिखा पुरोहित वर्ग ऐसे परिवार में जन्म लेनेवाले को नीचा समझता था।

बोल्होबा स्वभाव से एक बड़े धर्मात्मा पुरुष थे और एक दुकानदार किसान के रूप में बहुत व्यस्त रहते हुए भी अपने कुलदेवता विठ्ठल या पाण्डुरंग के लिये उनके मन में गहरी भक्ति थी। वास्तव में उनका सारा परिवार ही प्रभु-भक्ति के लिये प्रसिद्ध था। तुकाराम को भक्ति-भावना पारिवारिक विरासत के रूप में मिली।

तुकाराम का बचपन साधारण ढंग से बीता। अपनी आयु के अन्य बच्चों की तरह वे भी गाँव के खेलों में भाग लिया करते थे जिनमें से कुछ का वर्णन उन्होंने अपने अभंगों में किया है। समय की रीति के अनुसार उनके पिता ने तेरह वर्ष की आयु में ही उनका विवाह कर दिया। उनकी पत्नी रखुमाई केवल आठ वर्ष की थी। वह दमे के रोग से ग्रस्त थी, इसलिये तुकाराम के पिता ने अगले ही वर्ष फिर उनका विवाह जिजाई नाम की एक

लड़की से कर दिया जो आवली के नाम से भी जानी जाती थी। विवाह के बाद तुकाराम ने एक साधारण गृहस्थ का जीवन बिताया और दुकानदारी में पिता की मदद की। परिवार काफ़ी ख़ुशहाल था। उन लोगों के घर के काम-काज में सहायता करने और उनकी ज़मीन पर खेती करने के लिये उनके पास नौकर-चाकर थे, और पशु भी थे जो उनके खेतों में हल चलाते तथा उन्हें दूध देते थे।

अपनी नेकी, सच्चाई, व्यापार में ईमानदारी और दयालु स्वभाव के कारण तुकाराम सबके प्रेमपात्र थे और सब उनका आदर करते थे। वे कभी भी यह विश्वास नहीं कर सकते थे कि किसी के मन में धूर्तता और छल-कपट की भावना भी हो सकती है, क्योंकि उनके मन में यह दृढ़ धारणा बैठी हुई थी कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में परमात्मा का वास है।

इस तरह धार्मिक प्रकृति वाले सत्यनिष्ठ तुकाराम अभाव तथा चिन्ता से रहित जीवन बिता रहे थे। लेकिन यह सुख तथा उनके परिवार की सन्तोषजनक आर्थिक स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। सन् 1619 ई. के लगभग उन लोगों को एक भीषण अकाल का सामना करना पड़ा। उस समय तुकाराम मात्र इक्कीस वर्ष के थे। उन्हें व्यापार में भी भारी घाटा उठाना पड़ा। उनके पशु मर गए तथा अन्य सम्पत्ति भी उनके हाथ से जाती रही। वे निर्धन हो गए और परिवार के निर्वाह के लिये उन्हें ऋणी बनना पड़ा।

जल्दी ही साहूकारों ने उन्हें ऋण के भुगतान के लिये तंग करना शुरू कर दिया। वही समाज जो पहले उनका बहुत आदर करता था अब उनका तिरस्कार करने लगा। सहायता तथा मार्गदर्शन के लिये माता-पिता की ओर देखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि तुकाराम अभी सत्रह वर्ष के ही थे जब उन दोनों का देहान्त हो गया था। मित्रों या सम्बन्धियों का सहारा भी वे नहीं ले सकते थे, क्योंकि विपत्काल में सबने उनका साथ छोड़ दिया था। अन्न, जो कभी उनके घर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, धीरे-धीरे दुर्लभ होता चला गया और जल्दी ही खाने को कुछ भी नहीं बचा। तुकाराम की पहली पत्नी रखुमाई तथा उनका बेटा सन्तू अन्ततः भूख का शिकार हो गए।

माता-पिता, पत्नी और पुत्र के न रहने तथा अपने और परिवार के निर्वाह के सब साधन हाथ से निकल जाने के कारण तुकाराम बहुत दुःखी और हताश हो गए। वे नितान्त अकेलापन महसूस करने लगे। उन्हें सब जगह केवल अँधेरा तथा निराशा ही दिखाई देने लगी। इस दुर्दशा पर दुःख प्रकट करते हुए वे कहते हैं:

संवसारें जालों अतिदुःखें दुखी। मायबाप सेखीं क्रमिलिया॥
दुष्काळें आटिलें द्रव्यें नेला मान। स्त्री एकी अन्न अन्न करितां मेली॥
लज्जा वाटे जीवा त्रासलों या दुःखें। वेवसाय देखें तुटी येतां॥

गाथा* 1333

अर्थात्, भारी सांसारिक दुःखों से मैं दुःखी हो गया हूँ। मेरे माँ-बाप का पहले ही देहान्त हो चुका था। अब अकाल पड़ने के कारण धन नष्ट हो गया है और प्रतिष्ठा जाती रही है। एक पत्नी भी अन्न की रट लगाते हुए मर गई। व्यवसाय में भारी घाटा होता नज़र आ रहा है। मुझे लोगों से शर्म आने लगी है और मेरा मन दुःख से व्याकुल हो उठा है।

उस समय की अपने मन की अवस्था का पीड़ा-भरे शब्दों में वर्णन करते हुए तुकाराम कहते हैं:

सर्वविशीं माझा त्रासलासे जीव। आतां कोण भाव निवडे एक॥
संसाराची मज न साहेचि वार्ता। आणीक म्हणतां माझें कोणी॥

गाथा 914

अर्थात्, मैं सब ओर से बहुत परेशान हो गया हूँ। अब मैं किस की शरण में जाऊँ? सांसारिक जीवन अब मुझसे सहा नहीं जाता। अब कोई भी मेरा नहीं रहा।

तुकाराम को गहरा मानसिक आघात पहुँचा जिससे संसार के प्रति उनके सब भ्रम दूर हो गए। चाहे परिस्थितियाँ उनके विरुद्ध हो गईं और उनका

* गाथा—श्री तुकारामबावांच्या अभंगाची गाथा।

जीवन पूर्णतया बदल गया, पर यह अनुभव अन्ततः उनके लिये शुभ सिद्ध हुआ, क्योंकि उनके भाग्य में सांसारिक जीवन में उलझे रहना नहीं, बल्कि इससे कहीं अच्छी गति प्राप्त करना लिखा था। जैसा कि बेलसरे का कथन है, "स्वास्थ्य या धन की हानि अथवा किसी प्रियजन की मृत्यु दिल तोड़ डालनेवाले अनुभव होते हैं जो प्रायः सो रही आत्मा को जगाने में सहायक होते हैं" (तुकाराम, पृ.12)तुकाराम के साथ ऐसा ही हुआ। उन पर जो विपत्तियाँ आईं, उनके फलस्वरूप वे अधिकाधिक अन्तर्मुख होते चले गए।

दुःखों ने तुकाराम को दुनियावी भागदौड़ की निरर्थकता का कष्टकर बोध करा दिया और उनके मन का छिपा हुआ आध्यात्मिक रुझान प्रकट हो गया। वे अच्छी तरह समझ गए कि जीवन के सुख अस्थायी हैं, इसलिये सतही हैं। उन्होंने देख लिया कि ये मात्र बीमारी, भूख, निरादर, मृत्यु और विनाश के चेहरे पर पड़ा एक परदा हैं। उन्हें पता चल गया कि जीवन और मृत्यु, निरोगता और रोग, यौवन और वृद्धावस्था तथा सुख और दुःख साथ-साथ चलते हैं (तुकाराम, पृ.13)। एक अभंग में उनके वचन हैं:

शरीरसंपत्ति मृगजळभान। जाईल नासोन खरें नव्हे॥
तुका म्हणे आतां उपाधीच्या नांवें। आणियेला देवें वीट मज॥
गाथा 1421

अर्थात्, शरीर और सम्पत्ति दोनों मृगतृष्णा हैं। ये सत्य नहीं हैं। दोनों क्षीण होकर नष्ट हो जाएँगे। विपत्तियाँ देकर परमात्मा ने मेरे मन में दुनियावी मामलों के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी है।

तुकाराम की समझ में यह बात आ गई कि सच्चा सुख केवल प्रभु के प्यार में ही पाया जा सकता है। केवल प्रभु ही सत्य है, और सब धोखा है, माया का खेल है। अपनी उस समय की भावनाएँ तुकाराम ने नीचे लिखे अभंग में प्रकट की हैं:

नव्हे आराणूक संवसारा हातीं। सर्वकाळ चित्तीं हाचि धंदा॥
देवधर्म सांदीं पडिला सकळ। विषयीं गोंधळ गाजतसे॥

रात्रि दीस न पुरे कुटुंबाचें समाधान। दुर्लभ दर्शन ईश्वराचें॥
तुका म्हणे आत्महत्या रे घातकी। थोर होते चुकी नारायणीं॥
गाथा 73

अर्थात्, संसार में शान्ति नहीं है। मनुष्य का मन हर समय दुनियावी धन्धों में ही उलझा रहता है। इसलिये परमात्मा तथा आध्यात्मिकता उपेक्षित रहते हैं। मनुष्य विषयभोग में मग्न रहता है। दिन-रात वह परिवार के लिये मेहनत करता है, फिर भी परिवार सन्तुष्ट नहीं होता, और मनुष्य परमात्मा का दर्शन भी नहीं कर पाता। अरे हत्यारे, आत्मा का हनन है यह। प्रभु-भक्ति के सम्बन्ध में तुम भारी प्रमाद कर रहे हो।

लोगों और दुनियावी मामलों के बारे में तुकाराम का रवैया बिल्कुल बदल गया। वे एक दूसरा ही व्यक्ति बन गए। उनका हृदय-परिवर्तन हो गया। यह मूलभूत हृदय-परिवर्तन था जिसके फलस्वरूप माता-पिता, पत्नी तथा पुत्र की मुत्यु उनके लिये मात्र प्रभु की करनी न रहकर साथ ही उन्हें प्रभु का एक छिपा वरदान भी दिखने लगी। अनर्थों द्वारा तुकाराम में लाए गए परिवर्तन की एक झलक हम निम्नलिखित अभंग में देख सकते हैं:

बाईल मेली मुक्त जाली। देवें माया सोडविली॥
विठो तुझें माझें राज्य। नाहीं दुसऱ्याचें काज॥
पोर मेलें बरें जालें। देवें माया विरहित केलें॥
माता मेली मज देखतां। तुका म्हणे हरली चिंता॥
गाथा 778

अर्थात्, मेरी पत्नी ने मरकर कष्ट से मुक्ति पा ली और मुझे प्रभु ने उसके मोह के पंजे से छुड़ा दिया। हे प्रभो, अब तुम और मैं ही रह गए हैं, हम दोनों के बीच आनेवाला कोई नहीं रहा। मेरा बेटा मर गया तो यह भी अच्छा हुआ—प्रभु ने मुझे उसके मोह से छुटकारा दिला दिया। मेरी माता ने भी मेरी आँखों के सामने प्राण त्याग दिये और इस तरह प्रभु ने उसके सम्बन्ध में मेरी सारी चिन्ता दूर कर दी।

दु:खों की धधकती आग ने सांसारिक पदार्थों के प्रति तुकाराम के लगाव को आमूल जला डाला। उस आग में जले उनके हृदय में प्रभु-प्रेम का बीज अपने आप ही फूट पड़ा। उन्होंने मनुष्य-जीवन के वास्तविक अर्थ की खोज करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उनकी दृष्टि चरम सत्य पर जम गई और वे अपने अन्तर में उसका अनुभव प्राप्त करने के प्रयास में जुट गए। उन्हें और कोई इच्छा नहीं रही, सांसारिक पदार्थों के प्रति वे उदासीन हो गए। वे अपने आप से कहते हैं:

तुका म्हणे कांहीं न धरावी आस। जावें हें सर्वस्व टाकोनियां।
गाथा 1207

अर्थात्, मुझे और किसी भी चीज़ की इच्छा न रहे, मैं सबकुछ त्यागकर चला जाऊँ।

सतगुरु की खोज

प्रभु की ओर मुख मोड़ लेने पर तुकाराम ने धर्म-ग्रन्थों तथा नामदेव, ज्ञानेश्वर, कबीर और एकनाथ आदि विगत सन्तों की पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ कर दिया। साथ ही उन्होंने यह भी देख लिया कि जीवित सन्तों की संगति करना और उनका सत्संग सुनना उनके लिये बहुत महत्त्व रखता है। नीचे दी जा रही पंक्तियों में उन्होंने प्रभु के प्रेमी भक्तों की संगति के लिये अपनी उत्सुकता अभिव्यक्त की है:

तयालागीं जीव होतो कासावीस। पाहातील वास नयन हे॥
सुफळ हा जन्म होईल तेथून। देतां आलिंगन वैष्णवांसी॥
तुका म्हणे तोचि सुदिन सोहळा।
गाथा 2006

अर्थात्, मेरा मन और आँखें सन्तों के दर्शन के लिये व्याकुल हैं। जिस दिन मेरी किसी सन्त से भेंट हो जाएगी, वह दिन मेरे लिये बहुत शुभ होगा। उस दिन मेरा यह जन्म सफल हो जाएगा।

सन्तों तथा सच्चे भक्तों के साथ समय बिताने का कोई भी अवसर तुकाराम ने हाथों से नहीं जाने दिया। उनके वचन हैं:

रवि दीप हीरा दाविती देखणें। अदृश्य दर्शनें संतांचे नी॥...
मायबापें पिंड पाळियेला माया। जन्ममरण जाया संतसंग॥...
तुका म्हणे जवळी न पाचारितां जावें। संतचरणीं भावें रिघावया॥
गाथा 1260

अर्थात्, सूर्य, दीपक तथा हीरा केवल दृश्य वस्तुएँ ही दिखा सकते हैं, परन्तु सन्त आँखों से न देखी जा सकनेवाली चीज़ें भी दिखा देते हैं।... माता-पिता मायामय भौतिक शरीर का पालन-पोषण करते हैं, परन्तु सन्तों की संगति से जन्म-मरण के चक्कर का ही—बार-बार शरीर धारण करने के कष्ट का ही—अन्त हो जाता है।... सन्तों के पास बिना बुलाये भी जाना चाहिये, भक्ति-भाव से उनके चरणों की शरण लेनी चाहिये।

तुकाराम ने अपनी कविताओं में सन्तों की भरपूर प्रशंसा की है जिनके वचन आध्यात्मिकता के प्यासे लोगों के लिये अमृत-तुल्य होते हैं (गाथा 1550)। सन्तों की प्रशंसा में उनका एक दोहा इस प्रकार है:

चित मिले तो सब मिले। नहिं तो फुकट संग।
पानी पथर येक ही ठोर। कोरनभिगे अंग॥
गाथा 1195

अर्थात्, यदि शिष्य का दिल सन्त के दिल से मिल गया तो शिष्य को सबकुछ मिल गया, नहीं तो उसका सन्त की संगति करना व्यर्थ है। पानी और पत्थर के एक साथ रहने पर भी पत्थर अन्दर से तनिक भी नहीं भीगता।

तुकाराम प्रभु से बिनती करते हैं कि मुझे सन्तों के चरणों में रखो ताकि मैं तुम्हारा नाम न भूल जाऊँ (गाथा 4109)। एक अन्य कविता में वे प्रार्थना करते हैं कि यदि प्रभु को न भी पा सकें तो कम से कम इतने सौभाग्यशाली तो हों कि सन्तों की संगति में रहें। (गाथा 1076)। सन्तों की संगति को वे तीर्थ-स्थानों से अधिक पवित्र बताते हैं।

तुकाराम ने जान लिया था कि नाम-भक्ति ही प्रभु-प्राप्ति का एकमात्र साधन है। वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि मैं निरन्तर सुमिरन करना चाहता हूँ... मैं मन, वाणी और शरीर से केवल यही काम करना चाहता हूँ।... मेरे मन को अपने नाम के नशे में डुबो दो (गाथा 4014)। स्वभाव से एकान्त-प्रिय होने के कारण देहू के निकट भांबनाथ (भांबगिरि) और भण्डारा की निर्जन पहाड़ियाँ उन्हें अच्छी लगती थीं। परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कट इच्छा मन में लिये वे वहाँ निरन्तर घण्टों तक नाम के अभ्यास में मग्न बैठे रहते थे। उस अवस्था में उनका शरीर पूर्णतया निश्चल रहता था तथा साँपों, बिच्छुओं और बाघों से निरन्तर घिरे रहने पर भी वे कोई डर महसूस नहीं करते थे (गाथा 4354)। अभ्यास में नींद से बचने के लिये वे अपने बालों को एक डोरी से बाँध लिया करते थे, जिसका दूसरा किनारा वे एक खूँटी से बाँध देते थे। वे कहा करते थे कि जब मेरे सिर को झटका लगेगा तो मेरी झपकी अपने आप टूट जाएगी (लाइफ़ ऑफ़ तुकाराम, पृ. 132)।

नाम का मिलना, रूहानी कमाई और प्रभु-दर्शन की लालसा

उन दिनों में तुकाराम बड़े चाव के साथ प्रभु से यह प्रार्थना किया करते थे कि रूहानियत की राह पर उनका सही मार्गदर्शन करने के लिये उन्हें किन्हीं सतगुरु से मिला दे। उन्हें पूरा विश्वास था कि उनकी आत्मा के इस सूनेपन में प्रभु उनके साथ सम्पर्क अवश्य स्थापित करेगा। अपनी असहाय अवस्था उन्होंने इन शब्दों में प्रकट की है:

> रुसलों आम्हीं आपुलिया संवसारा। तेथें जनाचारा काय पाड॥
> आम्हां इष्ट मित्र सज्जन सोयरे। नाहीं या दुसरें देवाविण॥
>
> गाथा 3406

अर्थात्, मैं संसार से ऊब गया हूँ। मेरे साथ लोगों के व्यवहार का अब क्या महत्त्व रह गया है? अब मेरा प्रभु के अतिरिक्त और कोई मित्र या सम्बन्धी नहीं है।

इस स्थिति में तुकाराम का प्रभु के प्रति गहरा प्यार इन शब्दों में प्रकट हुआ है: हे प्रभो, मुझे न स्वर्ग की इच्छा है, न मुक्ति की। मुझे तो केवल तुम्हारा नाम और तुम्हारे लिये अटूट प्यार चाहिये (गाथा 4156)।

कठोर साधना तथा प्रार्थना के इस काल में ही सन् 1619 ई. में तुकाराम पर बाबा जी राघव चैतन्य की कृपा हुई जिन्होंने उन्हें नामदान दिया। वास्तव में यहीं से उनके आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है।

नामदान के बाद तुकाराम अपना अधिकांश समय गुरु के सिखाए रूहानी अभ्यास में लगाते थे। वे जानते थे कि उन्हें अपने को काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अंहकार, इन छः मनोगत शत्रुओं के पंजे से छुड़ाकर सारी दुनियावी गँदगी से मुक्ति दिलानी है, अपने को पूर्णतया निर्मल बनाना है। अन्य कोई भी उपाय उन्हें प्रभु की कृपा तथा दर्शन के योग्य नहीं बनाएगा।

अपने सब मानवीय दोषों को दूर करने के लिये तुकाराम को कड़ा संघर्ष करना पड़ा। उनकी गाथा (अभंग-संग्रह) ऐसी कविताओं से भरी पड़ी है जिनमें उन्होंने प्रभु से उनकी आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करने तथा उन पर अपनी दया-मेहर की वर्षा करने की प्रार्थना की है ताकि वे प्रभु-प्राप्ति के लिये आवश्यक करनी कर सकें।

तुकाराम जानते थे कि संसार में दुःख का मुख्य कारण प्रभु और उसकी सृष्टि में अन्तर की धारणा है, द्वैत-बुद्धि है, और सच्चा सुख प्रभु को सब पदार्थों तथा सब प्राणियों में विद्यमान देखने की क्षमता में है। आपके वचन हैं:

> ऐसें भाग्य कईं लाहाता होईन। अवघें देखें जन ब्रह्मरूप॥
> मग तया सुखा अंत नाहीं पार।...
> शांति क्षमा दया मूर्तिमंत अंगी। परावृत्त संगीं कामादिकां॥
> विवेकासहित वैराग्याचें बळ। धग्धगितोज्ज्वाळ अग्नि जैसा॥...
> तुका म्हणे माझी पुरवी वासना। कोण नारायणा तुजविण॥
>
> गाथा 2468

अर्थात्, मैं कब इतना सौभाग्यशाली होऊँगा कि मुझे सब पदार्थों और सब प्राणियों में केवल प्रभु ही दिखाई देगा? फिर मेरे सुख की कोई सीमा

नहीं रहेगी।... मुझमें काम, क्रोध जैसी दुर्बलताएँ नहीं रहेंगी, बल्कि मेरा मन दया और क्षमा की भावनाओं से भरा होगा। जलती आग जैसा शक्तिशाली विवेकपूर्ण वैराग्य मेरा बल होगा।... हे प्रभो, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन मेरी यह कामना पूर्ण कर सकता है?

संसार के पदार्थों से हमारा प्यार बहुत गहरा होता है, और उससे छुटकारा पाने के लिये हमें अपने मन में प्रभु के लिये प्यार पैदा करना होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता संसार के प्रति सच्चे वैराग्य पर निर्भर करती है। जब भक्त अच्छी तरह समझ लेता है कि केवल परमात्मा ही नित्य है, अन्य सबकुछ अनित्य है और स्थायी सुख प्रभु-प्राप्ति में ही है, तब वह संसार से विरक्त हो जाता है और प्रभु की ओर मुँह मोड़ लेता है।

जैसा कि कहा जाता है, एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। इसी तरह हृदय में भी केवल प्रभु या केवल धन-देवता का ही, संसार के पदार्थों का ही, वास हो सकता है। जन्म-जन्म से हम संसार के मोह के बोझ के नीचे दबे हुए हैं और यह नहीं जानते कि उससे कैसे छुटकारा पाया जाए। तुकाराम इस विकट परिस्थिति से भली भाँति परिचित हैं। वे कहते हैं:

दाटे कंठ लागे डोळियां पाझर।...
तुझ्या मोहें पडो मागील विसर।...
तुका म्हणे येथें पाहिजे सौरस। तुम्हांविण रस गोड नव्हे॥

गाथा 2423

अर्थात्, मेरा कण्ठ तुम्हारे लिये रोए मेरी आँखें तुम्हारे लिये आँसू बहाएँ।... तुम्हारे प्यार के कारण मैं दूसरे सब पदार्थों से विरक्त हो जाऊँ।... मेरे लिये तुम्हारे प्यार से अधिक मीठा और कुछ नहीं है।

आध्यात्मिक मार्ग पर प्यार केवल प्रभु से ही होना चाहिये। भक्त का ध्यान प्रभु में ही रहना चाहिये, किसी और में नहीं। ऐसा अक्सर कहा जाता है, शायद मज़ाक में ही, कि परमात्मा एक ईर्ष्यालु प्रियतम है जो अपने भक्त के हृदय में अपने अतिरिक्त और किसी भी व्यक्ति या पदार्थ के लिये थोड़ा-सा भी प्रेम सहन नहीं कर सकता। अपने आप को फटकारते हुए वे एक अभंग में कहते हैं:

फजितखोरा मना किती तुज सांगों। नको कोणा लागों मागें मागें॥
स्नेहवादें दुःख जडलेंसे अंगीं। निष्ठुर हे जगीं प्रेमसुख॥
निंदास्तुति कोणी करो दयामाया। न धरीं चाड या सुखदुःखें॥

गाथा 996

अर्थात्, ऐ मेरे मन, कितनी बार मुझे तुम्हें समझाना पड़ेगा कि संसार की किसी भी चीज़ में आसक्त मत होओ? ऐसा करने से तुम्हें केवल दुःख ही मिलेगा। जो संसार से विरक्त होते हैं, उन्हें प्रभु के प्रेम का सुख मिलता है। चाहे कोई तुम्हारी निन्दा करे या प्रशंसा और चाहे कोई तुम पर दया करे तथा तुम्हारे प्रति प्रेम-भाव दिखाए, तुम उसको कोई महत्त्व न दो। सांसारिक सुख और दुःख की तुम परवाह न करो। एक अन्य अभंग में तुकाराम कहते हैं:

धेनु चरे वनांतरीं। चित्त बाळकापें धरीं॥
तैसें करीं वो माझे आई। ठाव देउनि राखें पायीं॥
काढितां तळमळी। जिवनाबाहेर मासोळी॥

गाथा 1556

अर्थात्, गाय यदि जंगल में चर रही हो तो भी उसका ध्यान बछड़े में होता है। मछली को पानी में से निकालते ही वह तड़पने लगती है, छटपटाने लगती है। हे प्रभो, तुम्हारे लिये मेरा प्यार ऐसा ही हो। तुम्हारी कृपा से मैं तुम्हारे चरणों में टिका रहूँ।

एक बार मन में प्रभु के लिये प्यार जाग उठे तो हम प्रभु-दर्शन के लिये इतने उत्सुक हो जाते हैं कि हमें प्रेम के साथ दुःख का भी अनुभव होता है, और वह दर्शन सुलभ नहीं होता। प्रभु के लिये अपने प्यार के बारे में तुकाराम कहते हैं कि जैसे पतिव्रता को पति प्यारा होता है, वैसे ही प्रभु मुझे प्यारा है। जैसे लोभी अधिकाधिक धन चाहता है, वैसे ही मैं प्रभु को चाहता हूँ (गाथा 942)।

प्रभु के लिये तुकाराम का प्रेम इतना उत्कट हो उठा कि वे यह चाहने लगे कि प्रभु का स्वरूप सदा उनकी आँखों में बसा रहे। एक कविता में

उनके वचन हैं कि जब मेरे पास तुम्हारा प्यार है तो मुझे बैकुण्ठ से क्या प्रयोजन (गाथा 2915)। एक अन्य कविता में वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि मुझे केवल तुम्हारा नाम और तुम्हारा प्रेम चाहिये। मैं और कुछ नहीं चाहता (गाथा 3)।

प्रभु के प्रेम में तुकाराम को अपार आनन्द मिलता था। भोलेपन के साथ प्रभु को चिढ़ाते हुए वे कहते हैं कि भक्त होने के कारण मैं तुम्हारी अपेक्षा अच्छी स्थिति में हूँ:

कमोदिनी काय जाणे तो परिमळ। भ्रमर सकळ भोगीतसे॥
तैसें तुज ठावें नाहीं तुझें नाम। आम्हीच तें प्रेमसुख जाणों॥
गाथा 533

अर्थात्, कमलिनी अपनी सुगन्धि के विषय में क्या जाने? उसका सारा आनन्द तो भ्रमर लेता है। इसी प्रकार, तुझे अपने नाम से उत्पन्न होनेवाले मधुर प्रेम का पता नहीं है। उस प्रेम से मिलनेवाले सुख को केवल हम भक्त ही जानते हैं।

तुकाराम जानते थे कि मनुष्य के पाप प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में बाधा बनते हैं। वे कहते हैं: मेरे पापों के कारण मैं तुमसे मिल नहीं पा रहा(गाथा 2177)। साथ ही उन्हें इस बात की भी समझ है कि प्रभु की सहायता के बिना मनुष्य के पापों का नाश नहीं हो सकता। आपके वचन हैं:

आचरावे दोष हें आम्हां विहित। तारावे पतित तुमचें तें॥
गाथा 1825

अर्थात्, मैं तो पतित हूँ, पर यह तुम्हारा कर्तव्य है कि मुझे तार दो। और यह भी:

...करावा सांभाळ लागे त्याचा॥
तुका म्हणे तैसा मी एक पतित। परि मुद्रांकित जालों तुझा॥
गाथा 1055

अर्थात्, हे प्रभो, मैं चाहे कितना ही बड़ा पापी हूँ, पर तुम्हारी अंकित आत्मा हूँ। इसलिये यह तुम्हारी ज़िम्मेदारी है कि मेरी सँभाल करो।

मन आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का एक भयंकर शत्रु है। ये उनकी आत्मिक उन्नति में बाधा डालने और उन्हें पथभ्रष्ट करने के लिये कई युक्तियाँ अपनाता है। तुकाराम अपने मन को समझाते हैं कि संसार के मायामय महाजाल में मत फँसो। तुम्हें निगलने के लिये मृत्यु तुम्हारी ओर बढ़ रही है। जब वह तुम्हारे सिर पर आ खड़ी होगी, तब परमेश्वर के सिवा और कोई भी तुम्हारी सहायता करने नहीं आयेगा (गाथा 2808)। तुकाराम में गहरी लगन है। बार-बार वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं:

काय करूं आतां या मना। न संडी विषयांची वासना।...
आतां धावें धावें गा श्रीहरी। गेलों वांयां नाहीं तरी।
न दिसे कोणी आवरी। आणीक दुजा तयासी॥
न राहे एके ठायीं एकी घडी। चित्त तडतडा तोडी।
भरलें विषयभोवंडीं। घालूं पाहे उडी भवडोहीं॥
गाथा 4053

अर्थात्, अपने इस मन का मैं क्या करूँ? यह विषय-सुख छोड़ना ही नहीं चाहता।...हे प्रभो, दौड़कर मुझे बचाने आओ, नहीं तो मैं इसके हाथों बरबाद हो जाऊँगा। मैं नहीं समझता कि और कोई भी इसे मेरी ख़ातिर वश में कर सकता है। यह क्षण भर भी टिकता नहीं। यह विषयों से भरे इस विकराल संसार-सागर में कूद जाना चाहता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। साथी मनुष्यों के संग बेकार बातचीत में समय बिताना उसे अच्छा लगता है। अच्छा होता यदि उसने वह समय प्रभु की याद में बिताया होता। सामाजिक सम्बन्धों के मामले में तुकाराम ने अपने ऊपर कठोर नियम लागू कर लिये। उनका कहना है: मैं लोगों के साथ मिलना-जुलना और इधर-उधर की बातें करना नहीं चाहता (गाथा 2205)। वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं: हे प्रभो, यह सुनिश्चित कर लो कि मुझे लोग अच्छे न लगें।...यह तुम्हारे हाथ में है कि मैं तुम्हारे चरणों में पड़ा रहूँ (गाथा 2291)।

एक आध्यात्मिक जिज्ञासु को विनम्र होना चाहिये। उसमें अहंकार का लेशमात्र भी नहीं रहना चाहिये ताकि वह प्रभु का दर्शन कर सके। तुकाराम की नम्रता और प्रभु में उनके विश्वास का निम्नलिखित पंक्तियों में बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है:

पतित पतित। परी मी त्रिवाचा पतित॥
परी तूं आपुलिया सत्ता। मज करावें सरता॥
नाहीं चित्तशुद्धि। स्थिर पायांपाशी बुद्धि॥
अपराधाचा केलों। तुका म्हणे किती बोलों॥

गाथा 476

अर्थात्, मैं तो पतित हूँ। मैं तीन बार कहे देता हूँ कि मैं पतित हूँ। परन्तु, हे प्रभो, तुम अपनी शक्ति से मुझे पूर्ण बना दो (पूर्णतया निष्पाप कर दो)। मेरा मन निर्मल नहीं है और मेरी बुद्धि तेरे चरणों में नहीं टिकती। मैं कितनी बार तुमसे कहूँ कि मैं दोषों का बना हूँ?

आत्मा का अन्धकारमय समय

अपनी अविचल भक्ति तथा कठोर आध्यात्मिक अनुशासन के बावजूद प्रभु-प्राप्ति से पूर्व तुकाराम को आत्मा के अन्धकारपूर्ण समय में से गुज़रना पड़ा। उदासी, परेशानी, बेचैनी, सन्देह और दु:ख का ऐसा दौर हर भक्त के जीवन में आता है। ऐसी मानसिक अवस्था में तुकाराम प्रभु से प्रार्थना करते हैं:

नाहीं बळयोग अभ्यास कराया। न कळे ते क्रिया साधनाची॥
तुझिये भेटीचें प्रेम अंतरंगीं। नाहीं बळ अंगीं भजनाचें॥
काय पांडुरंगा करूं बा विचार। झुरतें अंतर भेटावया॥
तुका म्हणे सांगा वडिलपणें बुद्धी। तुजविण दयानिधी पुसों कोणां॥

गाथा 4285

अर्थात्, मुझमें योगाभ्यास करने की शक्ति नहीं है, न ही मुझे आध्यात्मिक साधना की अन्य रीतियों का ज्ञान है। चाहे मैं तुमसे मिलाप के लिये अत्यन्त

व्याकुल हूँ, पर मुझमें नाम-साधना करने की शक्ति नहीं है। अब मैं क्या करूँ? मैं तुमसे मिलने को तड़प रहा हूँ। हे करुणानिधान, तुम्हें छोड़ मैं और किसके पास जाऊँ?

तुकाराम को लगता था कि उनमें प्रभु तक पहुँचने के लिये आवश्यक साहस और शक्ति का अवश्य ही अभाव है। उन्हें सन्देह होने लग गया कि प्रभु कभी उन्हें दर्शन देगा भी या नहीं। सोच में डूबे वे कहते हैं:

करिसी कीं न करिसी माझा अंगीकार। हा मज विचार पडिला देवा॥
देसी कीं न देसी पायांचें दर्शन। म्हणऊनि मन स्थिर नाहीं॥
बोलसी कीं न बोलसी मजसवें देवा। म्हणोनियां जीवा भय वाटे॥
होईल कीं न होय तुज माझा आठव। पडिला संदेह हाचि मज॥
तुका म्हणे मी तों कमाईचें हीन। म्हणऊनि सीण करीं देवा॥

गाथा 1013

अर्थात्, मेरी नाम-साधना में इतनी कमी है कि मुझे चिन्ता हो गई है कि तुम मुझे अपना बनाओगे या नहीं, मुझे तुम्हारा दर्शन होगा या नहीं, तुम मुझसे बोलोगे या नहीं, मुझे याद करोगे या नहीं।

वे प्रभु से बिनती करते हैं कि मुझे अभ्यास में गहन एकाग्रता प्रदान करो। मुझमें उस युवती की-सी एकाग्रता हो जो सिर पर पानी के कई घड़े रखे गाती हुई पैदल घर जाती है और जिसे उस समय अपने हाथों से कुछ घड़ों को सँभालना नहीं पड़ता (गाथा 2873)।

तुकाराम ने वीरान पहाड़ियों पर जाकर लम्बे समय के लिये अभ्यास में बैठना शुरू कर दिया। नीचे दी गई पँक्तियों में वे बड़ी व्याकुलता के साथ प्रभु के दर्शन की प्रतीक्षा करते हुए उससे प्रार्थना करते दिखते हैं:

लोकमान देहसुख। संपत्तिउपभोग अनेक।
विटंबना दु:ख। तुझिये भेटीवांचूनि॥
तरी मज ये भेट ये भेट।...
काय ब्रह्मज्ञान करूं।...
रिद्धिसिद्धि काय करूं।

गाथा 1763

अर्थात्, मैं सम्मान, शरीर का सुख और सम्पत्ति नहीं चाहता क्योंकि तुमसे मिलाप के बिना ये दु:ख-मूल हैं। आओ और मुझसे मिलो।... बौद्धिक ज्ञान का कोई लाभ नहीं... ऋद्धि-सिद्धि भी व्यर्थ है।

परन्तु प्रभु ने उन पर कृपा नहीं की, उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। वे बेचैन हो उठे:

धरितों वासना परी नये फळ। प्राप्तीचा तो काळ नाहीं आला॥
तळमळी चित्त घातलें खापरीं। फुटतसे परी लाहीचिया॥

गाथा 1920

अर्थात्, हे प्रभो, तुमसे मिलने की लालसा है, परन्तु अभी तक मेरे प्रयत्न सफल नहीं हुए। शायद अभी समय नहीं आया। तपते खप्पड़ में डालने पर जैसे धान फूटता है, उसी तरह तुम्हारे वियोग की पीड़ा से मेरा हृदय फट रहा है।

तुकाराम प्रार्थना करते रहे और अपने सतगुरु तथा उनके दिए नाम में अडिग विश्वास के साथ पहले से भी अधिक साधना करने लग गए। एक स्थान पर वे कहते हैं कि मैंने बहुमत की कभी परवाह नहीं की। मैंने केवल अपने सतगुरु की शिक्षा पर निर्भर किया और नाम की शक्ति में पूर्ण विश्वास रखा (गाथा 1330)।

वे अपने शरीर की बिल्कुल परवाह नहीं करते थे और कई बार उन्होंने निरन्तर कई दिनों तक कुछ नहीं खाया। ऐसे अवसरों पर उनकी पत्नी जिजाई, जो चाहे उनकी अखण्ड प्रभु-भक्ति को नापसन्द करती थी, भोजन लिये जंगल में पहुँच जाती थी और उनको ढूँढ़ती थी ताकि वे जीवित रहने के लिये कम से कम कुछ तो खा लें। बाद में, जब प्राय: घर में अनाज का एक दाना भी नहीं होता था, तुकाराम अपने को 'प्रभु का पाहुना' घोषित कर देते थे। प्रभु की खोज में वे अपने प्राणों की बलि देने को भी तैयार थे (गाथा 371)।

तुकाराम की एकमात्र इच्छा यही थी कि उन्हें प्रभु का दर्शन हो जाए। उनकी यह इच्छा कई कविताओं में व्यक्त हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं:

धांव घालीं आई। आतां पाहातेसी काई॥
धीर नाहीं माझे पोटीं। जालें वियोगे हिंपुटी॥
करावें सीतळ।

गाथा 852

अर्थात्, तुम प्रतीक्षा किस बात की कर रहे हो? जल्दी आओ। मैं तुम्हारे वियोग में व्याकुल हूँ। अब और धैर्य धारण नहीं कर सकता। दर्शन देकर मेरे मन को शान्त करो।

आइकिलें कानीं तें रूप लोचन। देखावया सीण करिताति॥
प्राण हा विकळ होय कासावीस। जीवनाविण मत्स्य तयापरी॥
तुका म्हणे आतां कोण तो उपाव। करूं तुझे पाव आतुडे तो॥

गाथा 3037

अर्थात्, तुम्हारे दर्शन के लिये मेरी जान निकली जा रही है। मैं उतना ही व्याकुल हूँ जितनी व्याकुल पानी से बाहर निकली मछली होती है। मुझे बताओ कि तुम्हें पाने के लिये मैं क्या करूँ।

पूर्णिमेचा चंद्रमा चकोरा जीवन। तैसे माझें मन वाट पाहे॥
दिवाळीच्या मुळा लेंकी आसावली। पाहतसे वाटुली पंढरीची॥
भुकेलिया बाळ अति शोक करी। वाट पाहे परि माउलीची॥
तुका म्हणे मज लागलीसे भूक। धांवूनि श्रीमुख दावीं देवा॥

गाथा 2821

अर्थात्, जैसे चकवा पूर्णिमा के चाँद की प्रतीक्षा करता है, जैसे बेटी मायके से निमन्त्रण की प्रतीक्षा करती है और जैसे भूखा बच्चा अपनी माँ की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं बेचैनी के साथ दिन-रात तुम्हारे श्रीमुख के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। भागकर आओ और मुझे दर्शन दो।

भेटीची आवडी उताविळ मन।...
नेत्र उन्मळित राहिले ताटस्त। गंगा अश्रुपात वहावली॥
तुका म्हणे तुम्ही करा साचपणा। मुळींच्या वचना आपुलिया॥

गाथा 3418

अर्थात्, हे प्रभो, तुमसे मिलने को मैं बहुत व्याकुल हूँ।... पल भर के लिये भी मुझे नींद नहीं आती और मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी रहती है। अब तो अपने वचन का ध्यान रखते हुए मुझे दर्शन दो।

तुका म्हणे माझ्या जीवींचिया जीवा। सारूनियां ठेवा पडदा आतां॥
गाथा 3785

अर्थात्, हे मेरे प्राणाधार, अपने और मेरे बीच का पर्दा हटाकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दो।

इस तरह प्रभु के आगे गिड़गिड़ाते हुए तुकाराम उनकी प्रार्थना को न सुनने और उन्हें दर्शन न देने के लिये प्रभु को उलाहना भी देते हैं:

कां रे माझा तुज न ये कळवळा। असोनि जवळा हृदयस्था॥
अगा नारायणा निष्ठुरा निर्गुणा। केला शोक नेणां कंठस्फोट॥
कां हें चित्त नाहीं पावलें विश्रांती। इंद्रियांची गति खुंटेचि ना॥
तुका म्हणे कां रे धरियेला कोप। पाप सरलें नेणों पांडुरंगा॥
गाथा 543

अर्थात्, तुम तो मेरे हृदय के इतने निकट हो, फिर मेरी इस आतुरता का तुम्हें पता क्यों नहीं चलता? हे गुण-रहित, निष्ठुर प्रभो, तुम्हारे आगे रोते-रोते मेरा गला फटने को हो रहा है! मेरे मन को शान्ति क्यों नहीं मिलती? मेरी इन्द्रियों ने अभी तक अपना-अपना काम करना बन्द नहीं किया है (अभी भी वे मुझे परेशान कर रही हैं)। अब भी तुम मुझसे रुष्ट क्यों हो? क्या मेरे पापों का अभी तक नाश नहीं हुआ है?

पर साथ ही तुकाराम यह भी जानते हैं कि प्रभु की कृपा के बिना उनका उसे पाने का प्रयास सफल नहीं होगा:

तुका म्हणे माझा न चले सायास। राहिलों हे आस धरुनी तुझी॥
गाथा 1737

अर्थात्, मेरा कठोर परिश्रम निष्फल रहा है। अब मेरी आशा तुम्हीं में केन्द्रित है।

अन्ततः परमात्मा ने उनकी प्रार्थना सुन ली और उन्हें अपनी कृपा की झलक दिखा दी। उन्हें उसका दर्शन हुआ और वे परमात्मा के चरणों में नतमस्तक हो गए। आनन्द-विभोर हो उठे वे:

सुखाचें ओतलें। दिसे श्रीमुख चांगलें॥
मनें धरिला अभिळाष। मिठी घातली पायांस॥
होतां दृष्टादृष्टी। ताप गेला उठाउठी॥
तुका म्हणे जाला। लाभें लाभ दुणावला॥
गाथा 2019

अर्थात्, मुझे प्रभु के श्रीमुख का दर्शन हुआ और इससे मुझे अपार आनन्द मिला। मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हुआ और मैं दोनों हाथों से उसके चरणों से लिपट गया। उसे निहारते हुए मेरी सारी मनोव्यथा दूर हो गई और मेरी ख़ुशी बढ़ती गई।

लेकिन जब तुकाराम को पुनः दर्शन नहीं हुआ तो उनके आनन्द का अन्त हो गया, उनका हर्ष लुप्त हो गया। वे गहरे दुःख में डूब गए। अपने से पहले और बाद में आनेवाले बहुत-से भक्तों की तरह उन्होंने भी यह जान लिया कि प्रभु के धाम की यात्रा एक ऐसी चढ़ाई है जिसमें अनेक उतार-चढ़ाव हैं—चढ़ाव प्रभु की दया-मेहर की झलकों के रूप में आते हैं और उतार निराशा की गहराइयों के रूप में (तुकाराम, पृ. 16)।

फिर नैराश्य तथा मनस्ताप का यह ज्वार धीरे-धीरे उतरने लगा। कोई भी सुख या दुःख सदा नहीं रहता। तुकाराम के मन के सामने से धुन्ध हट गई और वह धीरे-धीरे शान्त होने लग गया। दृढ़ निश्चय और विश्वास के साथ तुकाराम प्रभु-दर्शन के प्रयास में जुटे रहे। नीचे इस मनःस्थिति में वे प्रार्थना करते हैं:

सदा माझे डोळे जडो तुझे मूर्ती।...
गोड तुझें रूप गोड तुझें नाम। देईं मज प्रेम सर्वकाळ॥
विठो माउलिये हाचि वर देई। संचरोनी राहीं हृदयामाजी॥
तुका म्हणे कांहीं न मागें आणीक। तुझें पायीं सुख सर्व आहे॥
गाथा 3

अर्थात्, हे प्रभो, मेरी आँखें सदा तुम्हारे रूप पर टिकी रहें... तुम्हारा रूप बहुत सुन्दर है, तुम्हारा नाम बहुत मधुर है। मुझे सदा के लिये अपना

प्रेम दे दो। मुझे यह वर दो कि तुम सदा मेरे मन में वास करोगे। मैं और कुछ नहीं माँगता क्योंकि सारा सुख तुम्हारे चरणों में ही है।

डॉ. एस. डी. पेंडसे ने ठीक ही कहा है कि इस अभंग में 'सदा', 'सर्वकाळ' तथा 'हृदय', ये शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं क्योंकि तुकाराम को मन्दिर की मूर्ति जैसी किसी भौतिक वस्तु की इच्छा नहीं थी। वे तो अपने अन्तर में एक सूक्ष्म स्वरूप का स्थायी वास चाहते थे (साक्षात्कारी सन्त तुकाराम, पृ.20)।

तुकाराम अपनी आन्तरिक दृष्टि से प्रभु का दर्शन करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि वे सदा प्रभु के संग रहें। वे प्रार्थना करते हैं:

शेवटींची विनंती। ऐका ऐका कमळापती॥
काया वाचा मन। चरणीं असे समर्पण॥
जीवपरमात्मा ऐक्यासि। सदा वसो हृदयेंसी॥
तुका म्हणे देवा। कंठीं वसावें केशवा॥

गाथा 4405

अर्थात्, हे प्रभो, मेरी यह अन्तिम बिनती सुन लो। मैं अपना तन, मन और वचन तुम्हारे चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। मेरे अन्तर में जीवात्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव हर समय बना रहे। हे प्रभो, तुम मेरे कण्ठ में बस जाओ (मेरे कण्ठ से जो भी वाणी निकले, उसमें तुम्हारी ही महिमा का गान हो)।

तुकाराम के मन की ऐसी अवस्था हो गई थी कि उन्हें प्रभु और उसके नाम के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु आकृष्ट नहीं करती थी। उस मनोदशा में उनके वचन हैं: मेरी जिह्वा को हरिनाम जपने की धुन लग गई है। जपती हुई यह पल भर के लिये भी रुकती नहीं (गाथा 3079)।

अब तुकाराम अपने सतगुरु तथा उनके दिये नाम में अटल विश्वास के साथ और अधिक अभ्यास करने लग गए। उनकी प्रभु से प्रार्थना थी कि मेरे कण्ठ में केवल तुम्हारा ही नाम हो और मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व तुम्हारे लिये प्रेम से परिपूर्ण हो (गाथा 3042)।

प्रभु का साक्षात्कार

भाँबगिरी के वीरान क्षेत्र में उनके हृदय की गहराइयों से निकली प्रार्थनाओं और उनकी वेदनापूर्ण पुकार को परमात्मा ने आख़िरकार सुन लिया। उसने अपने आकार-रहित तेजोमय स्वरूप को उनके आगे प्रकट कर दिया। उनकी आत्मा के अन्धकारमय समय का अन्त हो गया और उनके अन्तर में ज्ञान का प्रकाश हो गया। जब उनके लिये परमात्मा के सिवा और किसी भी चीज़ का कोई महत्त्व नहीं रह गया, परमात्मा उनके सामने प्रकट हो गया। प्रभु के साक्षात्कार से उन्हें अपार आनन्द की प्राप्ति हुई। द्वैत लुप्त हो गया, तुकाराम प्रभु से एकरूप हो गए। निम्नलिखित कविता में तुकाराम ने प्रभु के प्रकट होने का वर्णन किया है:

पंधरा दिवसांमाजी साक्षात्कार जाला। विठोवा भेटला निराकार॥
भांबगिरिपाठारीं वस्ति जाण केली। वृत्ति थिरावली परब्रह्मीं॥...
सर्प विंचू व्याघ्र आंगासी झोंबले। पीडूं जे लागले सकळिक॥
दीपकीं कर्पूर कैसा तो विराला। तैसा देह जाला तुका म्हणे॥

गाथा 4354

अर्थात्, पन्द्रह दिन की अखण्ड साधना के अनन्तर मुझे प्रभु का दर्शन हुआ, मेरी निराकार प्रभु से भेंट हुई। तब भांबगिरी के पठार पर ही मेरा वास था और मैं प्रभु के ध्यान में मग्न था। साँपों, बिच्छुओं और बाघों के संभावित आक्रमणों से न डरता हुआ मैं साधना में लीन रहा और प्रभु में विलीन हो गया जैसे कपूर अग्नि में विलीन हो जाता है। प्रभु से एकरूपता के आनन्द में डूबे तुकाराम के शब्द हैं:

निराभासीं पूर्ण जालों समरस। अखंड ऐक्यास पावलों आम्ही॥
...जालों तदाकार नित्य शुद्ध॥

गाथा 4326

अर्थात्, वह परमात्मा अतुलनीय और कल्पनातीत है, पर मैं उससे पूरी तरह एकरूप हो गया हूँ। उससे जो एकता मैंने प्राप्त की है, वह टूट नहीं

सकती, वह नित्य है।... मैं परमात्मा से एकाकार हो गया हूँ जो सदा निर्मल रहता है। एक अन्य कविता में तुकाराम कहते हैं:

रवि रश्मिकळा। नये काढितां निराळा॥
तैसा आम्हां जाला भाव।
गाथा 577

अर्थात्, सूर्य और उसकी किरणों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। प्रभु के साथ मेरा भी अब ऐसा ही सम्बन्ध हो गया है।

प्रभु-कृपा से तुकाराम के प्रेम ने प्रभु को जीत लिया और उनकी आत्मा को सदा के लिये उसके चरणों में वास मिल गया। वे परमात्मा से एकरूप हो गए और प्रभु उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि में दिखाई देने लगा। अब कौन उपासक रह गया और कौन उपास्य? यह एक वर्णनातीत आध्यात्मिक अनुभव था क्योंकि अब तुकाराम प्रभु को सदा अपने अंग-संग पाते थे।

तुकाराम के अनेक अभंग प्रभु के साथ साहचर्य के, उससे एक हो जाने के, आनन्दामृत से भरे पड़े हैं। उनमें से कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं:

हातींचिया दीपें दुराविली निशी।...
सुख दुःखाहूनि नाहीं विपरीत।...
तुका म्हणे आतां आम्हांसी हें भलें। अवघेचि जाले जीव जंत॥

अर्थात्, मेरे हाथ आये ज्ञान के दीपक ने अन्धकार दूर कर दिया है।... सुख और दुःख मेरे लिये समान हो गए हैं।... अब मुझे सब प्राणी अच्छे लगते हैं।

झरा लागला सुखाचा। ऐसा मापारी कइंचा॥
गाथा 2020

अर्थात्, मेरे अन्तर में अपरिमित सुख की एक धारा बह रही है। इस सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता।

तत्त्वमसि विद्या ब्रह्मानंद सांग।
गाथा 4313

अर्थात्, तुकाराम को प्रभु से एक होने का अनुभव हो गया है और वह परम आनन्द में मग्न हो गया है।

जीवन्मुक्त हो जाने पर, जीते-जी कर्मों के बन्धन से और फलस्वरूप जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा लेने पर, तुकाराम अपनी विगत अवस्था की वर्तमान अवस्था से तुलना करते हुए कहते हैं:

आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळां। तो जाला सोहळा अनुपम्य॥
आनंदें दाटलीं तिन्ही त्रिभुवनें। सर्वात्मकपणें भोग जाला॥
एकदेशीं होतों अहंकारें आथिला। त्याच्या त्यागें जाला सुकाळ हा॥
फिटलें सुतक जन्म-मरणाचें। मी माझ्या संकोचें दुरी जालों॥
नारायणें दिला वसतीस ठाव। ठेवूनियां भाव ठेलों पायीं॥
गाथा 2669

अर्थात्, अपना मरना मैंने अपनी आँखों से देखा। यह आनन्द का एक अनुपम अवसर था। मेरे लिये तीनों लोकों में आनन्द छा गया क्योंकि मुझे परमात्मा के सर्वव्यापक होने का अनुभव हो गया। पहले मैं इस संसार तक सीमित था और अहंकार में डूबा हुआ था; अब मैंने अहंकार को त्याग दिया है तो मेरा अच्छा समय आ गया है (मुझे परम आनन्द की प्राप्ति हो गई है)। 'मैं-मेरी' की संकीर्णता दूर हो गई है और आत्मा की आवागमन-जनित अपवित्रता मिट गई है। प्रभु ने मुझे अपने धाम में स्थान दे दिया है और मैं प्रेमपूर्वक उसके चरणों में रहने लगा हूँ।

प्रभु की कृपा से तुकाराम प्रभु से एकरूप हो गए:

...अनुहात ध्वनी गगन गर्जे॥
तुक्या स्वामी स्थापी निजपदीं दासा। करूनि उल्हासा सप्रेमता॥
गाथा 4330

अर्थात्, अन्तर के आकाश में अनाहत नाद गूँज रहा है और तुकाराम के स्वामी ने अपने सेवक को प्रेम और उल्लास के साथ अपने पद पर स्थापित कर दिया है।

इस अवस्था में तुकाराम को सर्वत्र परमात्मा दिखाई देने लगा और उनके लिये संसार के सभी पदार्थ आकर्षणहीन हो गए। वे कहते हैं कि पदार्थों का दाता भी परमात्मा है और उनका भोक्ता भी परमात्मा। अब कहने को और क्या रह गया? जो कुछ भी आँखें देखती हैं, प्रभु का रूप है। सर्वव्यापक परमात्मा ही अनाहत नाद है (गाथा 321)। अन्यत्र वे कहते हैं कि अन्तर में अनाहत को सुनने में लीन व्यक्ति को अपना ध्यान बाहर लाने में कठिनाई होती है (गाथा 1637)।

अपने जीवन के विषय में सोचते हुए तुकाराम ने पाया कि प्रभु का साक्षात्कार उन्हें सन्तों की संगति, उनके सत्संग, गुरु के द्वारा नामदान और उनकी अपनी आध्यात्मिक साधना के फलस्वरूप हुआ है। फिर भी, इस मामले में सर्वाधिक महत्त्व प्रभु की दया-मेहर का है। तुकाराम साधक के अपने प्रयास को महत्त्व तो देते हैं, परन्तु प्रभु-कृपा का स्थान उससे ऊपर रखते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि वे प्रभु को पा सके तो प्रभु की कृपा से, न कि अपनी योग्यता से।

तुकाराम को प्रभु-प्राप्ति के लिये की गई अपनी साधना का भी ध्यान था। वे कहते हैं कि मैंने इधर-उधर देखे बिना और एक क्षण भी गँवाए बिना प्रभु की सेवा की (गाथा 2433)। परन्तु वे नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करते हैं कि प्रभु की कृपा के बिना साधना सफल नहीं हो सकती। एक अभंग में तो उनका कहना है कि प्रभु ने मुझसे कोई सेवा प्राप्त किये बिना ही मुझे आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान कर दी है। अपने बहुत बड़े सौभाग्य के कारण ही मुझे प्रभु का दर्शन हुआ है (गाथा 2546)।

वे सभी महात्मा जिन्होंने आन्तरिक अनुभव प्राप्त किया है, अन्तर में प्रभु का दर्शन किया है, दिन-रात साधना करके ही ऐसा कर पाए हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में करनी का ही महत्त्व है, केवल बातों से काम नहीं बनता। आलसी व्यक्ति कभी भी आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता। सांसारिक जीवन में

भी तो कुछ प्राप्त करने के लिये हमें परिश्रम करना ही पड़ता है। ऐसे ही आध्यात्मिक जीवन में कुछ पाने के लिये भी मेहनत की ज़रूरत पड़ती है। एक निर्भय व्यक्ति ही संसार के लोगों की आलोचना तथा अत्याचार का सामना कर सकता है और अपनी इन्द्रियों पर विजय पा सकता है। यह तो बिना रुके चलता रहनेवाला संघर्ष है। प्रभु को पाने के लिये तुकाराम ने भी यह संघर्ष किया, यह लड़ाई लड़ी। उनके वचन हैं: प्रयत्न से अशक्य भी शक्य हो जाता है। नियमित साधना से भी यही होता है (गाथा 298)।

प्रभु-प्राप्ति के अनन्तर तुकाराम का जीवन-लक्ष्य

प्रभु-प्राप्ति के अनन्तर तुकाराम के जीवन का तीसरा चरण आरम्भ होता है। अब उनका जीवन केवल लोगों का कल्याण करने, उन्हें सन्तों की शिक्षा से परिचित कराने और प्रभु-प्राप्ति की दिशा में उनका मार्गदर्शन करने के लिये था। लोग दुःख में डूबे हुए थे और यह दृश्य उनके लिये सह्य नहीं था। अब एक नया लक्ष्य उनके सामने था—दूसरों को बचाना। एक अभंग में वे कहते हैं:

> अणुरणीयां थोकड़ा। तुका आकाशाएवढा॥...
> तुका म्हणे आतां। उरलों उपकारापुरता॥
>
> गाथा 993

अर्थात्, मैं अणु से भी छोटा था, परन्तु अब प्रभु में समाकर आकाश जितना विस्तीर्ण हो गया हूँ।...अब मैं केवल जीवों पर उपकार करने के लिये ही जीवित हूँ।

अन्यत्र वे कहते हैं कि अब प्रभु मेरा सतत सहचर है। अतीत के सन्तों की तरह मैं भी सत्य के मार्ग का अनुसरण करने के लिये धरती पर आया हूँ। भक्ति की डोंड़ी पीटता हुआ मैं प्रभु के नाम की सहायता से तुम्हें सुरक्षित उसके चरणों तक पहुँचा दूँगा (तुकाराम, पृ.33)।

बोलचाल की मराठी में किये गए तुकाराम के सत्संग जनसाधारण को प्रभावित करते थे। जो लोग उनका मज़ाक उड़ाने आते, वे भी सत्संग सुनने

के लिये रुक जाते और फिर उनके शिष्य बन जाते। उनके शिष्यों में कई प्रतिष्ठित व्यक्ति थे जिनमें से सन्ताजी तेली और गंगाराम मावळा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, क्योंकि तुकाराम द्वारा प्रभु-प्रेरणा से उच्चारे गए पद उन्होंने ही लिपिबद्ध किये थे।

पद-दलित लोगों में फैली आध्यात्मिक विवशता की भावना को दूर करने में तुकाराम ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अपने अथक प्रयत्नों से उन्होंने उन लोगों को न केवल सब मनुष्यों की समानता के प्रति, बल्कि प्रभु की भक्ति करने और अन्तर में उसे पा लेने के उनके मौलिक अधिकार के प्रति भी जाग्रत किया। उन्होंने भरसक प्रयास किया कि लोग नाम के महत्त्व को समझें और अपने आध्यात्मिक कर्तव्य के प्रति अधिक सचेत हों।

तुकाराम ने मनुष्य-जीवन को उसकी खोई हुई गरिमा वापस दिलाई और वर्ण-व्यवस्था के शिकार जन-साधारण में आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत की। उन्होंने लोगों को विश्वास दिलाया कि प्रभु सर्वशक्तिमान् है और सब प्राणियों की सँभाल करता है, जिससे उनमें सुरक्षा तथा निर्भयता की भावना का संचार हुआ।

तुकाराम के मार्ग में बाधाएँ और उन पर अत्याचार

तुकाराम को घर में और बाहर दोनों जगह भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, और ऐसा केवल तब ही नहीं हुआ जब वह प्रभु-प्राप्ति के हेतु साधना-रत थे, अपितु बाद में तब भी जब उन्होंने लोगों को अपना आध्यात्मिक सन्देश देना आरम्भ कर दिया। उनकी पत्नी जिजाई इस बात से बहुत असन्तुष्ट और रुष्ट थी कि वे अपना अधिकांश समय आध्यात्मिक कार्यों में लगा देते थे। तुकाराम के साथ उसका रवैया कटु तथा विरोधपूर्ण था क्योंकि उनके कारण उसे और उसके बच्चों को निर्धनता तथा आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। वह उनके प्रभु को गालियाँ दिया करती थी और बड़ी कठोर भाषा में यह कहती हुई उन्हें झिड़कती रहती थी, उनके नुक्स निकालती रहती थी, कि आप परिवार की ओर ध्यान नहीं देते।

तुकाराम 'पाण्डुरंग', 'पाण्डुरंग' जपते हुए बड़े धैर्य के साथ उसकी डाँट-फटकार सह लेते थे। प्रभु के लिये इस नाम का प्रयोग उन्हें विशेष रूप से प्रिय था। अपने एक पद में वे पत्नी-सम्बन्धी इस 'सौभाग्य' के लिये यह कहकर प्रभु का धन्यवाद करते हैं कि अगर उन्हें प्यार करनेवाली पत्नी मिली होती तो वे उसके प्यार के बन्धन में बँध गए होते।

घर के बाहर तुकाराम को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उन्हें समझने के लिये हिन्दू समाज के तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक ढाँचे को ध्यान में रखना ज़रूरी है। उस समय वर्ण-व्यवस्था को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था और भगवान् की आराधना करना तथा दूसरों को भगवान् को पाने की विधि बताना ब्राह्मण अपना ख़ास विशेषाधिकार मानते थे। तुकाराम ब्राह्मण जाति के नहीं थे। उन जैसे साधारण श्रेणी के मनुष्य के लिये धर्म-ग्रन्थों का पढ़ना-पढ़ाना सर्वथा वर्जित था।

परन्तु तुकाराम जन-साधारण में आध्यात्मिकता फैलाने के अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये अन्तरात्मा को जाग्रत करनेवाले सत्संग दे रहे थे। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और लोग उन्हें सन्त मानकर उनका बहुत आदर करने लगे। अन्य अनेक सन्तों की तरह उन्हें भी उन लोगों के हाथों दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा जिन्हें उनके चुम्बकीय आकर्षण से डर लगता था या उसके कारण उनसे ईर्ष्या महसूस होती थी। रूढ़िवादी हिन्दुओं में इस बात को लेकर बहुत रोष फैला हुआ था कि तुकाराम जैसा एक निम्न जाति का व्यक्ति लोगों को इतना अधिक प्रभावित कर रहा है। उन्होंने तुकाराम पर दोष लगाया कि वे शास्त्रों की शिक्षा और महात्माओं के उपदेश को आम जनता में फैलाने का धर्म-विरुद्ध कार्य कर रहे हैं और इसी को आधार बनाकर उन्होंने तुकाराम को अनेक कष्ट दिये।

तुकाराम ने मराठी में बहुत से पद लिखे। वे सत्संग किया करते थे जिनमें इन पदों का गायन भी हुआ करता था। एक निम्न जाति के व्यक्ति का ऐसा काम करना ब्राह्मणों के विचार में शास्त्रों का अनादर और प्रभु का अपमान करना था। यह उनके कार्यक्षेत्र में अनधिकार प्रवेश के समान था। दिलीप चित्रे ने लिखा है:

तुकाराम का पहला अपराध मराठी में लिखना था। दूसरा और इससे कहीं अधिक बड़ा अपराध यह था कि उनका जन्म एक ऐसी जाति में हुआ था जिसका ब्राह्मणों के ऊँचे धर्म पर कोई अधिकार नहीं था। वह तो उस धर्म के बारे में कोई मत रखने के अधिकार से भी वंचित थी। तुकाराम का धार्मिक विषयों पर कविता लिखना ब्राह्मणों की दृष्टि में पाखण्ड और वर्ण-व्यवस्था का उल्लंघन था72 (सेज़ तुका, पृ.8)।

कहा जाता है कि हिन्दू रूढ़ियों और परम्पराओं के कट्टर समर्थक रामेश्वर भट्ट तुकाराम की प्रसिद्धि से इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने पंचायत में उनके विरुद्ध धर्म-विरोधी कार्य करने की शिकायत कर दी। पंचायत ने आदेश दिया कि तुकाराम के अभंगों की हस्तलिखित प्रतियाँ इन्द्रायणी नदी में फेंक दी जाएँ। तुकाराम ने दु:ख-भरे मन से आदेश का पालन किया। उनका मज़ाक उड़ाते हुए उनसे कहा गया कि अगर वे प्रभु के सच्चे भक्त हैं तो प्रभु डूबी हुई पाण्डुलिपियों को पानी में से निकलवाकर वापस उनके पास पहुँचा देगा। सन्त अपनी निन्दा तो सह लेते हैं, परन्तु प्रभु की या अपने सतगुरु की निन्दा वे नहीं सह सकते। तुकाराम निरन्तर तेरह दिन ध्यान लगाए नदी के किनारे बैठे रहे। अन्तत: प्रभु ने अपने प्यारे भक्त की लाज रख ली। कहा जाता है कि नदी ने वे पाण्डुलिपियाँ जैसी की तैसी लाकर तुकाराम को लौटा दीं।

ऐसा समझा जाता है कि तुकाराम पर अत्याचार करने के कारण ही रामेश्वर भट्ट को एक भारी शारीरिक कष्ट सहना पड़ा, क्योंकि उस कष्ट से उन्हें तब ही राहत मिली जब उन्होंने तुकाराम की शरण ले ली। इसके बाद वे तुकाराम के एक परम आज्ञाकारी शिष्य बन गए और उन्हें एक उच्च कोटि का सन्त मानने लगे। अपनी अंकित आत्माओं को सतगुरु के चरणों तक पहुँचाने के प्रभु के कई ढंग हैं।

तुकाराम को जिन कष्टों का सामना करना पड़ा, उनके एक अन्य विवरण में मम्बाजी गोसावी का वृत्तान्त दिया गया है। मम्बाजी एक स्वयं-नियुक्त धार्मिक नेता थे और धर्मोपदेशक का व्यवसाय करते थे। जैसे-जैसे तुकाराम के सत्संगों को सुनने के लिये इकट्ठे होनेवाले लोगों की संख्या बढ़ती गई,

मम्बाजी की आय कम होती चली गई। उन्हें तुकाराम की लोकप्रियता से ईर्ष्या थी और मन में उनके प्रति स्थायी रोष था। वे तुकाराम के घर के निकट ही रहते थे और उन्होंने अपने घर के चारों ओर बगीचा बना रखा था। एक बार तुकाराम की पत्नी जिजाई की भैंस उनके बगीचे में घुस आई और उसने बहुत-से पौधे खा लिये। मम्बाजी को बहुत क्रोध आया और उन्होंने अवसर का लाभ उठाते हुए काँटेदार छड़ियों से तुकाराम की पिटाई की। तुकाराम ने वह पिटाई और उससे होनेवाली पीड़ा प्रभु का नाम जपते हुए धैर्यपूर्वक सह ली। कहा जाता है कि जिजाई ने तुकाराम के शरीर में से सब काँटे तो निकाल दिये, पर साथ ही यह कहते हुए उनके प्रभु को ख़ूब कोसा कि उसने उसकी घरेलू ज़िन्दगी बरबाद कर दी है।

तुकाराम से घृणा होते हुए भी मम्बाजी उनके सत्संगों में जाया करते थे। जब तुकाराम ने अपने अगले सत्संग में उन्हें अनुपस्थित पाया तो उनके बारे में पूछताछ की। तुकाराम को बताया गया कि मम्बाजी के बदन में बहुत दर्द है। तुकाराम तुरन्त मम्बाजी के पास गए और उन्हें साष्टांग प्रणाम करके अपनी पत्नी की भैंस के द्वारा उनके पौधे खाए जाने के लिये उनसे क्षमा माँगी जिसके कारण उन्हें तुकाराम को पीटने का कष्ट उठाना पड़ा था। इसके बाद उन्होंने कुछ समय के लिये मम्बाजी के शरीर की मालिश की, और बताया जाता है कि दर्द जाता रहा। तुकाराम की दयालुता और नम्रता से मम्बाजी बहुत प्रभावित हुए। उन्हें अपने धृष्टतापूर्ण व्यवहार पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और उनमें बड़ा परिवर्तन आ गया।

एक अन्य वृत्तान्त में बताया जाता है कि एक बार तुकाराम को अपने एक शिष्य गंगाराम मावळा की पत्नी के हाथों भी दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा। वह महिला तुकाराम से बहुत नाराज़ थी क्योंकि उन्होंने उसके पति को अपना शिष्य बना लिया था। एक बार उसने क्रोधवश उन पर खौलता हुआ पानी डाल दिया। पर वे धैर्यपूर्वक प्रभु के ध्यान में लगे रहे और उन्होंने यह कष्ट तथा अपमान भी सह लिया।

तुकाराम को जो घोर कष्ट सहने पड़े वे उन्हें उनके मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं कर पाए और वे अपने ध्येय की पूर्ति के लिये निरन्तर

प्रयत्नशील रहे। उन्होंने अन्त तक गहरी आध्यात्मिकता से भरा जीवन बिताया और सन् 1650 में 52 वर्ष की आयु में शरीर त्याग दिया। अपने अन्तिम दिनों में वे यही कहते रहे कि मैं अपने घर जा रहा हूँ और सबसे विदा लेता हूँ (गाथा 4471)।

यद्यपि तुकाराम लम्बी आयु नहीं जिये, उनके अनुयायियों की संख्या काफ़ी बड़ी थी। उनके शिष्यों ने सच्ची आध्यात्मिकता का जीवन व्यतीत किया। गुरु ने उन्हें जिस आध्यात्मिक साधना की शिक्षा दी थी, वह साधना उन्होंने बड़ी लगन के साथ की।

तुकाराम का व्यक्तित्व

तुकाराम बड़े सीधे, निष्कपट और स्पष्टवादी थे। उनमें नम्रता भी थी और दयालुता भी। धैर्य तथा सहनशीलता के गुण उनमें असाधारण मात्रा में पाए जाते थे। सांसारिक पदार्थों से उन्हें तनिक भी लगाव नहीं था और अहंकार का भी उनमें नितान्त अभाव था। उनकी नम्रता की तो कोई सीमा ही नहीं थी। एक पद में वे कहते हैं:

> ळाहानपण दे गा देवा। मुंगी साखरेचा रवा॥
> ऐरावत रत्न थोर। तया अंकुशाचा मार॥
>
> गाथा 1282

अर्थात्, हे प्रभो, मुझे छोटा होने की भावना दो। छोटी-सी चींटी ही रेत में से चीनी के कणों को चुन सकती है। इन्द्र का वाहन और एक बहुमूल्य रत्न ऐरावत हाथी बहुत बड़ा है, पर उसे अंकुश की मार सहनी पड़ती है।

अपने शरीर का, बल्कि अपनी किसी भी चीज़ का, दूसरों के हित के लिये उपयोग करने में तुकाराम को प्रसन्नता होती थी। जिन्हें गर्मी लग रही होती उन्हें वे पंखा झलते, भूखों को वे रोटी देते और बीमारों को दवाइयाँ, और बूढ़ों की वे ख़रीदारी में सहायता करते।

तुकाराम जब भी थके-माँदे मुसाफ़िरों को सिर पर सामान का बोझ उठाए जाते देखते, वे दया से द्रवित हो उठते और अक्सर उनके आगे उनका सामान

अपने सिर पर रखकर ले जाने का प्रस्ताव रखते। वे उन्हें एक मन्दिर या गाँव के चौंक तक का मार्ग दिखा देते और यदि उन लोगों को वहाँ जगह न मिलती तो उन्हें अपने घर ले जाते, उन्हें भोजन खिलाते, वहाँ ठहरने को स्थान देते और उनके थके हुए पाँव दबाते तथा पाँवों की मालिश करते।

एक बार एक किसान ने, जो गाँव से कहीं बाहर जा रहा था, तुकाराम को अपने खेतों की रखवाली करने को कहा। तुकाराम ने सहर्ष उसकी बात मान ली, लेकिन जब वे खेतों की रखवाली करने गए तो परमेश्वर के नाम का जाप करने में इतने तल्लीन हो गए कि खेतों में जी भरकर अनाज के दाने चुगनेवाले पक्षियों में उन्हें परमेश्वर ही दिखाई दिया। किसान जब लौटा और उसने देखा कि फ़सल का कितना नुकसान हो गया है तो वह बौखला उठा और उसने तुकाराम को दण्ड दिलाने के लिये उन्हें पंचायत के सामने पेश कर दिया। बाद में जब अनाज को तोला गया तो वह सामान्य माप से दस गुना पाया गया।

एक बार शिवाजी महाराज ने तुकाराम को स्वर्ण-मुद्राएँ, भूषण तथा क़ीमती वस्त्र उपहार के रूप में भेजे ताकि वे अपना जीवन आराम से बिता सकें। लेकिन तुकाराम ने यह कहकर ये सब चीज़ें लौटा दीं कि धन मेरे लिये गोमांस के तुल्य है और मैं चींटी तथा राजा को बराबर मानता हूँ। इससे पता चलता है कि तुकाराम सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति से पूर्णतया मुक्त थे।

तुकाराम की शरीर तथा संसार की वस्तुओं में अनासक्ति का कारण उनका प्रभु-प्रेम ही था। इस सम्बन्ध में जस्टिन ई. ॲबट का कहना है कि तुकाराम के वैराग्य के बारे में ग़लत-फ़हमी हो सकती है। वे वैरागी हो गए तो इसलिये नहीं कि उन्हें वैराग्य से कोई आध्यात्मिक लाभ होता दिखाई दिया, बल्कि इसलिये कि प्रभु में उनका ध्यान इतना केन्द्रित हो गया कि अपने शरीर की उन्हें कोई परवाह नहीं रही। वे 'विदेह' हो गए। वे हरि-चिन्तन में इतने मग्न हो गए कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उनके पास समय ही नहीं रहा। उन आवश्यकताओं की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था, उन्हें पूरा करने की उनकी इच्छा ही नहीं होती थी।

वे तब ही कुछ खाते जब उन्हें खाने को दिया जाता, तब ही सोते जब शरीर की प्रकृति उन्हें विवश कर देती (लाइफ़ ऑफ़ तुकाराम, पृ. 7)।

तुकाराम को ख़ुद अपने लिये तो वैरागी का जीवन ठीक जान पड़ता था, परन्तु दूसरों को वे यही राय देते थे कि तुम सच्चाई और ईमानदारी के साथ सामान्य गृहस्थों का जीवन बिताओ और अपने कर्तव्य का पालन मन में प्रभु की भक्ति और उसके आगे आत्म-समर्पण की भावना लिये हुए करो। वास्तव में, तुकाराम ने कभी संन्यास नहीं लिया, कभी अपना परिवार नहीं छोड़ा। परिवार तथा समाज के प्रति अपने दायित्व का उन्होंने यथाशक्ति पालन किया।

परन्तु मानसिक शान्ति में बाधा डालनेवाले धन के लिये उनके पास कोई समय नहीं था। उनके पिता साहूकार थे, और कहा जाता है कि वे पुत्रों के लिये बहुत-से प्रोनोट (उधार लिया पैसा लौटाने के वचन-पत्र) छोड़ गए थे। तुकाराम ने महसूस किया कि यदि वे काग़ज़ात उनके पास रहे तो वे सदा यही सोचते रहेंगे कि यह पैसा वापस मिलेगा या नहीं। इसलिये उन्होंने अपने हिस्से के प्रोनोट नदी में फेंक दिये। यह घटना स्वामी जी के पिता से विरासत में मिले प्रोनोटों को फाड़ डालने की याद दिलाती है।

तुकाराम का एकमात्र जीवन-लक्ष्य प्रभु-प्राप्ति था। उन्हें धन-सम्पत्ति और जीवन की सुख-सुविधाओं की रत्ती भर परवाह नहीं थी, और न ही उन्हें यश अथवा सम्मान की लालसा थी। उनके आचार-व्यवहार से प्राणीमात्र के प्रति सदा दया तथा क्षमाशीलता प्रकट होती थी।

तुकाराम की कविताएँ

तुकाराम के लगभग पाँच हज़ार अभंगों अथवा कविताओं को संगृहीत करके पुस्तक का आकार दे दिया गया है, और यह पुस्तक 'गाथा' के नाम से जानी जाती है। मराठी में 'गाथा' शब्द का अर्थ ही आध्यात्मिक अथवा धार्मिक पद्यों की संग्रह है। परमात्मा, नाम, सन्तों तथा अन्य आध्यात्मिक विषयों के बारे में उनके प्रभावशाली विचार उनके मुख से अभंगों के रूप में प्रकट हुए। इन अभंगों में उन्होंने एक साधारण मनुष्य की अवस्था से लेकर सचमुच सन्त-पद प्राप्त कर चुके महात्मा की अवस्था तक के अपने सारे अनुभव

व्यक्त कर दिये हैं। इसलिये 'गाथा' तुकाराम के जीवन के सब पहलुओं और आध्यात्मिक तथा धार्मिक धारणाओं पर प्रकाश डालती है। इन अभंगों में बचपन में उनकी गाँव के खेलों में रुचि, उनका परिवारिक जीवन, अपने पैतृक व्यवसाय की ओर उनका रवैया, उनकी क्षमाशीलता, सच्चाई, दयालुता और नम्रता तथा उनके द्वारा परम्परागत लोक-साहित्य का अध्ययन, यह सबकुछ स्पष्ट रूप से चित्रित मिलता है।

तुकाराम की कविताएँ उनकी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का, उनकी कमज़ोरियों तथा आध्यात्मिक साधना में उनके सामने आनेवाली कठिनाइयों का, उनके सन्देहों का, उनके प्रभु-प्रेम तथा प्रभु-भक्ति में होनेवाले उतार-चढ़ाव का, उनकी आशाओं और उनके द्वारा अनुभूत निराशाओं का तथा अन्ततः उन्हें प्रभु-साक्षात्कार से प्राप्त होनेवाले परम आनन्द का विशद वर्णन करती हैं। इन कविताओं के माध्यम से तुकाराम लोगों को प्रभु के ख़ज़ाने का हिस्सेदार बनने और भवसागर को पार करने, जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाने, का निमन्त्रण देते हैं। इन कविताओं में लोगों के दुःखों तथा उनके प्रति तुकाराम की गहरी सहानुभूति का हृदय-स्पर्शी चित्रण पाया जाता है।

तुकाराम ने परम्परागत पद्धति के अनुसार धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया था, फिर भी उनकी कविताएँ आध्यात्मिक रहस्यों से भरी पड़ी हैं। उनके अभंगों में गहरी भक्ति-भावना है, गेयता और अनुपम मिठास है। उनकी भाषा सरल परन्तु काव्यात्मक तथा रसपूर्ण है। उन्होंने परिष्कृत तथा ग्रामीण, सूक्ष्म और सीधी-सादी, दोनों प्रकार की उपमाओं का प्रयोग किया है, लेकिन सभी अर्थपूर्ण तथा प्रभावशाली हैं। उनके शब्दों में बल है और वे आसानी से गाँवों के लोगों की समझ में आ जाते हैं। अपनी कविताओं के बारे में तुकाराम का ख़ुद अपना यह कहना है कि वे प्रभु की रचना हैं:

करितों कवित्व म्हणाल हें कोणी। नव्हे माझी वाणी पदरींची॥
माझिये युक्तीचा नव्हे हा प्रकार। मज विश्वंभर बोलवितो॥
काय मी पामर जाणे अर्थभेद। वदवी गोविंद तेंचि वदें॥

गाथा 1007

अर्थात्, यदि कोई कहे कि तुकाराम कविता रच रहा है तो यह ठीक नहीं होगा, क्योंकि यह मेरी ख़ुद की वाणी नहीं है। इसमें मेरा कोई कौशल नहीं। मुझसे तो परमात्मा यह वाणी बुलवा रहा है। मैं नाचीज़ भला अर्थ की गहराई क्या जानूँ? परमात्मा जो बुलवाता है, वही मैं बोल देता हूँ।

तुकाराम के अभंगों में से कुछ को 'पायकीचे' (पैदल सिपाहियों के अभंग) का नाम दिया गया है। ये अभंग प्रतीकात्मक हैं। ये इस बात पर बल देते हैं कि भक्तों को सिपाही बनना पड़ता है। एक भक्त को अपने मन तथा संसार दोनों के साथ लड़ाई लड़नी पड़ती है। ये अभंग वीरता की बातें करते हैं, आध्यात्मिक रणभूमि के सैनिकों (साधकों) की सेना के सैनिकों के साथ तुलना करते हैं। 'सारबचन' में स्वामी जी महाराज का भी कथन है कि सन्त वही बन सकता है जिसमें सिपाही की-सी दृढ़ता तथा हठ हो (9:9:12)।

आध्यात्मिक क्षेत्र में सबसे अधिक महत्त्व आन्तरिक परिवर्तन का होता है। तुकाराम कहते हैं कि जब तक आन्तरिक कायाकल्प नहीं हो जाता, बाह्य महानता खोखली है। तुकाराम का भक्त से सन्त के रूप में विकास उनकी कविताओं में स्पष्ट दिखाई देता है।

तुकाराम ने जो कुछ भी कहा या किया, उस सबके कारण वे मानवमात्र के लिये सदा आशा तथा प्रेरणा का स्रोत रहेंगे। हमें सदा उनसे मार्गदर्शन मिलता रहेगा।

उपदेश

वैसे तो पुस्तक के दूसरे भाग में दी जा रही तुकाराम की कविताएँ उनकी शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डालेंगी, परन्तु यहाँ संक्षेप में उसकी चर्चा समग्र रूप में उसका परिचय देने की दृष्टि से उपयोगी हो सकती है। तुकाराम की शिक्षा उच्चतम कोटि के अन्य सन्तों की शिक्षा से भिन्न नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि मैंने अपनी शिक्षा सत्य की उसी खान में से निकाली है जो आदि काल से चली आ रही है। समय के बीतने के साथ-साथ उस शिक्षा पर धूल जमती रही है और अब उसके मूल रूप को समझना बहुत कठिन हो गया है। इसलिये मैं उसे फिर से स्पष्ट रूप से समझाने के लिये आया हूँ (गाथा 520)।

तुकाराम अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि के फलस्वरूप इस योग्य हो गए थे कि इस पुरातन शिक्षा की व्याख्या करें। उन्होंने स्वयं कहा है कि मैं प्रभु के धाम का वासी हूँ और अपने समय के लोगों के कल्याण के लिये नीचे आया हूँ।

मनुष्य-जन्म का महत्त्व

अन्य सभी सन्तों की तरह तुकाराम भी आत्मा को सर्वव्यापक परमात्मा का अंश बताते हैं और कहते हैं कि इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आत्मा तथा परमात्मा की एकता इस अभंग में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है:

पय दधि घृत आणि नवनीत। तैसें दृश्यजात एकपणें॥
कनकाचे पाहीं अलंकार केले। कनकत्वा आले एकपणें॥
मृत्तिकेचे घट जाले नानापरी। मृत्तिका अवधारीं एकपणें॥
तुका म्हणे एक एक ते अनेक। अनेकत्वीं एक एकपणा॥

गाथा 4353

अर्थात्, जिस तरह दही, घी और मक्खन, ये सब वास्तव में दूध ही होते हैं, उसी तरह दिखाई देनेवाले सब पदार्थ वास्तव में एक ही हैं। गहने देखने में भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं, पर सब सोने के ही बने होते हैं। मिट्टी से नाना प्रकार के घड़े बनते हैं, पर मिट्टी सबमें एक ही होती है। तुकाराम कहते हैं कि वह (प्रभु) एक ही है। वह एक से अनेक हो गया है, लेकिन अनेकता लिये हुए भी वह 'एक' एक ही है।

माया-जाल में फँसी आत्मा अच्छे और बुरे कर्म इकट्ठे करती रहती है और जन्म-मरण का चक्कर काटती रहती है। यह सांसारिक सुखों की मृगतृष्णा के पीछे भागती रहती है और स्थायी शान्ति इसे कभी नहीं मिलती। आत्मा की दुर्दशा का वर्णन तुकाराम नीचे लिखे अभंग में करते हैं:

मुक्त होता परी बळें जाला बद्ध। घेऊनियां छंद माझें माझें॥...
तुका म्हणे वांया गेलें वांयां विण। जैसा मृगशीण मृगजळीं॥

गाथा 1567

अर्थात्, आत्मा वास्तव में स्वतन्त्र थी, लेकिन 'मैं-मेरी' के जाल में फँसकर उसने अपने को बन्दी बना लिया।... जैसे मृग पानी के पीछे, वैसे ही आत्मा सांसारिक सुख की मृगतृष्णा के पीछे भागते-भागते व्यर्थ ही अपने आप को थका लेती है।

अन्य सन्तों की तरह तुकाराम का भी यही कहना है कि कई जन्मों के बाद और बड़े पुण्यों से आत्मा को मनुष्य-जन्म मिलता है। इसे आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने तथा प्रभु के पास लौट जाने के लिये प्रभु-भक्ति में लगाना चाहिये। एक अभंग में वे अपने विषय में प्रभु से कहते हैं:

बहुजन्मे केला लाग। तो हा भाग लाधलों॥
जीव देइन हा बळी। करीन होळी संसारा॥
गेलें मग नये हाता। पुढती चिंता वाटतसे॥

गाथा 3048

अर्थात्, बहुत से जन्मों के बाद मुझे यह मनुष्य-जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब इसे सार्थक करने के लिये मैं अपने प्राणों की बलि दे दूँगा

और संसार को आग लगा दूँगा (संसार का मोह पूर्णतया मिटा दूँगा)। एक बार मनुष्य-जीवन का अन्त हो जाए तो यह फिर नहीं मिलता। इसलिये मुझे बहुत चिन्ता हो रही है।

अन्य सन्तों की तरह तुकाराम भी मनुष्य-शरीर को जीवित परमात्मा का मन्दिर बताते हैं (गाथा 660)। जिसमें हमें परमात्मा को खोजना और पाना है। वे कहते हैं कि प्रभु में समाकर नित्य सुख पाने के लिये देवता भी मनुष्य-शरीर के लिये तरसते हैं, क्योंकि प्रभु-भक्ति केवल मनुष्य-जीवन में ही हो सकती है (गाथा 254)। तुकाराम भक्ति के मामले में विलम्ब के विरुद्ध हैं। वे हमें प्रेरणा देते हैं कि जब मनुष्य-जन्म मिल ही गया है तो प्रभु का नाम जपो और परम सुख प्राप्त करो।... यमराज चोर की तरह तुम्हारे पीछे लगा हुआ है और तुम्हारे दिन गिन रहा है। इसलिये जल्दी करो, विलम्ब मत करो।... मृत्यु हमारे हाथ में नहीं है:

लाभ जाला बहुतां दिसीं। लाहो करा पुढें नासी।
मनुष्यदेहा ऐसी। उत्तम जोडी जोडिली॥
घेईं हरिनाम सादरें। भरा सुखाचीं भांडारें॥...
घेउनि माप हातीं। काळ मोवी दिवसराती।
चोर लाग घेती। पुढें तैसें पळावें॥...
हातीं काय ऐसें। तुका म्हणे नेणसी॥

गाथा 2018

धर्म तथा भक्ति का दिखावा, रीति-रिवाज तथा कर्मकाण्ड

तुकाराम तथा अन्य सभी सन्तों का कहना है कि परमात्मा को केवल मनुष्य-शरीर में ही पाया जा सकता है। अब यह प्रश्न उठता है कि उसे पाया कैसे जाए। साधारणतया लोग उसे पाने की विधि से अनजान होते हैं। पाखण्डी साधु, ज्ञान-विहीन पण्डित तथा पुजारी या उनके अपने परम्परागत विश्वास उन्हें गुमराह कर देते हैं। वे मनुष्य के बनाए पूजा-स्थानों पर जाते हैं और वहाँ कर्मकाण्ड तथा धार्मिक रीतियों के पालन में लग जाते हैं। परमात्मा की खोज में वे तीर्थ-यात्रा करते हैं अथवा पहाड़ों पर या जंगलों में चले जाते हैं।

तुकाराम उनसे पूछते हैं:

जाऊनियां तीर्था काय तुवां केलें। चर्म प्रक्षाळिलें वरी वरी॥
अंतरींचे शुद्ध कासयानें जालें। भूषण त्वां केलें आपणया॥...
तुका म्हणे नाहीं शांति क्षमा दया। तोंवरी कासया फुंदां तुम्ही॥

गाथा 1732

अर्थात्, तीर्थों में जाकर तुमने क्या कर लिया? केवल बाहर से अपनी त्वचा को धो लिया। तीर्थ-स्नान से भला तुम्हारी अन्तर की शुद्धि कैसे हुई जो तुमने उसे अपनी शोभा का, लोगों में अपने सम्मान का, साधन बना लिया?... तुकाराम पूछते हैं कि तीर्थ-यात्रा से तुम्हारे अन्दर शान्ति, क्षमा और दया तो आई नहीं, फिर तुम फूले-फूले क्यों फिरते हो?

तुकाराम हमें समझाते हैं कि तीर्थों में तो केवल पानी और देवताओं की पत्थर की बनी मूर्तियाँ हैं, जब कि सन्तों के अन्दर स्वयं परमात्मा विद्यमान है, प्रकट है। मुक्ति पाने के लिये वाराणसी या अन्य किसी तीर्थ की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं। किसी सन्त का दर्शन कर लेना काफ़ी है। सन्त के दर्शन से अनगिनत पाप नष्ट हो जाते हैं (गाथा 114)।

तुकाराम थोथे दिखावे की निन्दा करते हैं। आपका कहना है कि विद्वत्ता या बुद्धि के प्रदर्शन से, योगासनों से और तपस्या या कठोर संयम से प्रभु को नहीं पाया जा सकता (गाथा 810)।

जैसा कि सब जानते हैं, तुकाराम की आध्यात्मिक खोज कुलदेवता विठ्ठल की भक्ति से आरम्भ हुई थी। बाद में गुरु की कृपा और नाम के अभ्यास से उन्हें अपने अन्दर परमात्मा का दर्शन हो गया और इष्टदेव का नाम उनके लिये परमात्मा का नाम बन गया। तुकाराम ने अपनी बहुत-सी कविताओं में भगवान् विठ्ठल को याद किया है, पर यह समझ लेना आवश्यक है कि 'विठ्ठल', 'पाण्डुरंग', 'केशव', 'हरि', 'नारायण' तथा 'राम' आदि नामों का प्रयोग उन्होंने परमात्मा के लिये ही किया है। एक अभंग में वे प्रभु को 'अव्यक्त' (अप्रकट), 'अलक्ष' (अलक्ष्य अर्थात् अदृश्य), 'अपार' (असीम), 'अनन्त' (नित्य); 'निर्गुण' (त्रिगुणातीत) 'सत्-चित्' तथा

'नारायण' कहकर सम्बोधित करते हैं और फिर कहते हैं कि जिसकी जैसी भावना होती है, उसी के अनुसार तुम स्वेच्छा से नाम और रूप धारण कर लेते हो:

अव्यक्ता अलक्षा अपारा अनंता। निर्गुणा सच्चिदा नारायणा॥
रूप नाम घेसी आपुल्या स्वइच्छा। होसी भाव तैसा त्याकारणें॥

गाथा 700

सतगुरु से नाम का मिलना

प्रश्न उठता है कि बाहर खोज करना यदि प्रभु-प्राप्ति की दृष्टि से निरर्थक है तो फिर प्रभु को पाया कैसे जाए? तुकाराम हमें बताते हैं कि सतगुरु से नाम का मिलना इसके लिये ज़रूरी है। जिज्ञासु को शिष्य बनाते समय सतगुरु उसे नामदान देते हैं, उसे अभ्यास की ठीक विधि सिखाते हैं और उसके अन्तर में गूँज रहे शब्द या नाम के साथ उसकी आत्मा का सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। फिर उसकी आन्तरिक यात्रा में वे उसकी सहायता करते हैं। इस तरह वे उसे अपना लक्ष्य सिद्ध करने की क्षमता प्रदान करते हैं। तुकाराम कहते हैं कि शब्द सचमुच सब पदार्थों का सार है। यही सबसे बड़ी दात है जो किसी को दी जा सकती है:

शब्द हा बहुसार उपकाराची राशी।

गाथा 426

तुकाराम यह भी कहते हैं:

गुरुचिया मुखें होइल ब्रह्मज्ञान॥

गाथा 4407

अर्थात्, सतगुरु से मिली दीक्षा से ही परमात्मा का ज्ञान होगा।

तुकाराम ने भी प्रभु से आध्यात्मिक यात्रा में उनका मार्गदर्शन करके उन्हें वापस उनके निज-घर पहुँचाने के लिये किसी सतगुरु को भेजने की प्रार्थना की।

प्रभु से मिलानेवाले शब्द के अन्तर में प्रकट हो जाने पर वे इन शब्दों में गुरु के प्रति आभार व्यक्त करते हैं:

तुका म्हणे गुरू कृपेचा आधार। नामीं निरंतर डुल्लतसों॥
छन्दबद्ध गाथा 24

अर्थात्, तुकाराम कहते हैं कि मुझे गुरु-कृपा का सहारा मिल गया है जिससे मैं निरन्तर नाम का झूला झूलता हूँ। अन्यत्र उनका कथन है:

उजळला दीप गुरुकृपा॥
गाथा 2668

अर्थात्, गुरु की कृपा से मेरे अन्दर नाम का दीपक जल उठा है।

अन्य सन्तों की तरह तुकाराम के लिये भी सतगुरु केवल परमात्मा से एक हो चुके महात्मा ही नहीं, बल्कि साक्षात् परमात्मा ही हैं। आप स्पष्ट कहते हैं:

गुरुमूर्त्ति भेटले पांडुरंग॥
गाथा 4357

अर्थात्, परमात्मा मुझे गुरु के रूप में मिला।

इसलिये तुकाराम हमें समझाते हैं कि तुम्हारा मनुष्य-शरीर व्यर्थ जा रहा है। इसे सार्थक बनाने के लिये गुरु-चरणों की सेवा करो:

नरदेह वांयां जाय। सेवीं सदगुरूचे पाय॥
गाथा 4380

शिष्य से अपेक्षित योग्यताएँ और उसके कर्तव्य

शिष्य में सच्चाई और लगन होनी चाहिये, उसका एकमात्र लक्ष्य प्रभु-प्राप्ति होना चाहिये। सतगुरु तथा उनकी शिक्षा में उसका पूरा विश्वास होना चाहिये। उसे पूर्ण आत्म-समर्पण करने और सतगुरु तथा प्रभु के प्रेम के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिये तैयार होना चाहिये। तुकाराम कहते हैं:

चित मिले तो सब मिले। नहिं तो फुकट संग॥
पानी पथर येक ही ठोर। कोरनभिगे अंग॥
गाथा 1195

अर्थात्, यदि शिष्य का दिल गुरु के दिल से मिल जाए (यदि शिष्य भी गुरु से वैसे प्यार करने लगे जैसे गुरु उससे करता है) तो समझ लो कि शिष्य को सबकुछ मिल गया। नहीं तो उसका एक सन्त की संगति करना भी व्यर्थ सिद्ध होगा। पानी और पत्थर के एक साथ रहने पर भी पत्थर अन्दर से ज़रा-सा भी नहीं भीगता।

एक अन्य अभंग में तुकाराम अभ्यासी से कहते हैं:

तुका प्रीत रामसुं। तैसी मिठी राख॥
पतंग जाय दीप परे रे। करे तन की खाक॥
गाथा 1184

अर्थात्, पतंगा दीपक के प्रेम में अपने आप को भूलकर दीपक पर जा गिरता है और उसकी लौ में अपने शरीर को भस्म कर देता है। तू भी प्रभु से ऐसा प्रगाढ़ प्रेम कर कि तू अपने अस्तित्व को भूलकर प्रभु में समा जाए।

शिष्य चाहे पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़, चाहे पुरुष हो या स्त्री, चाहे विवाहित हो या अविवाहित और उसकी सामाजिक पृष्ठ-भूमि चाहे कैसी भी हो, पर उसका आत्म-निर्भर, निष्कपट तथा सत्यनिष्ठ होना ज़रूरी है। वह गृहस्थ भी हो सकता है; ज़रूरी नहीं कि वह ब्रह्मचारी या संन्यासी हो। तुकाराम स्वयं भी संन्यासी नहीं थे, वे गृहस्थ और व्यापारी थे। शिष्य से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह शाकाहारी होगा और शराब से परहेज़ करेगा तथा पराए धन पर और अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य किसी स्त्री पर विकारपूर्ण दृष्टि नहीं डालेगा।

पर यदि जिज्ञासु ये सब शर्तें पूरी भी करता हो तो ज़रूरी नहीं कि वह सन्तों की संगति की ओर आकृष्ट हो, किसी सन्त-सतगुरु का शिष्य बनना चाहे। तुकाराम के वचन हैं:

तुका म्हणे जरि पूर्वपुण्यें सिद्धि। तरिच राही बुद्धि संतसंगीं॥

गाथा 4124

अर्थात्, गत जन्मों के पुण्यों का उदय होने पर ही मनुष्य की बुद्धि सन्तों की संगति की ओर मुड़ती है।

सच्चा गुरु

तुकाराम इस बात पर बहुत ज़ोर देते हैं कि सतगुरु, अर्थात् सच्चे गुरु के, पूरे गुरु के, मिले बिना हम जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति नहीं पा सकते। केवल ऐसा गुरु ही रूहानी कमाई करके अन्तर में शब्द से जुड़ने और इस तरह इसी जन्म में मुक्ति पा लेने में हमारी सहायता कर सकता है। तुकाराम हमें समझाते हैं कि किसी को गुरु धारण करते समय हमें पूरी सावधानी बरतनी चाहिये क्योंकि सच्चे सन्त संसार में विरले ही होते हैं, जबकि सन्त होने का दावा करनेवाले पाखण्डी महात्मा यहाँ बहुत मिलते हैं। वे कहते हैं कि (जीवन के संघर्ष से) थका हुआ एक व्यक्ति यदि थके हुए किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाएगा तो दोनों की एक-सी दुर्दशा होगी (गाथा 4061)।

तुकाराम ऐसे लोगों के सम्बन्ध में शोक प्रकट करते हैं जो गेरुए वस्त्र पहनकर और जटा रखकर साधु बनने का स्वाँग करते हैं और दर-दर भीख माँगते फिरते हैं (गाथा 3866)। वे ऐसे जीवन को धिक्कारते हैं जिसमें दूसरों की कमाई पर पेट पाला जाए। वे हमें ऐसे बनावटी साधुओं से सावधान करते हैं, ऐसे पाखण्डियों की तीखी आलोचना करते हैं। उन लोगों पर यह टिप्पणी देखिये:

नव्हती ते संत धरिता भोंपळा। करितां वाकाळा प्रावरण॥
नव्हती ते संत करितां कीर्तन। सांगतां पुराणे नव्हती संत॥
नव्हती ते संत वेदाच्या पठणे। कर्म आचरणें नव्हती संत॥
नव्हती संत करितां तप तीर्थाटनें। सेविलिया वन नव्हती संत॥
नव्हती संत माळामुद्रांच्या भूषणें। भस्म उघळणें नव्हतीं संत॥
तुका म्हणे नाहीं निरसला देहे। तों अवघे हे संसारिक॥

गाथा 2305

अर्थात्, हाथ में कमण्डलु पकड़ लेने या फटे-पुराने वस्त्र धारण कर लेने से कोई सन्त नहीं बन जाता, और न ही कोई बाजों के साथ भजन गाने, पुराणों में कही बातें बताने, वेदों का अध्ययन करने या शास्त्रों में बताए कर्म करने से सन्त बनता है। तीर्थ-यात्रा, तप तथा बनवास भी मनुष्य को सन्त नहीं बनाते और माला तथा बड़े-बड़े कुण्डलों से विभूषित होने या शरीर पर भस्म बुरकने से भी कोई सन्त नहीं बनता। जब तक मनुष्य अपने शरीर को भुला नहीं देता, वह संसारी ही रहता है।

तो फिर सच्चा सन्त कौन होता है? तुकाराम के वचन हैं:

वैष्णव तो जया। अवघी देवावरी माया।
नाहीं आणीक प्रमाण। तन धन तृण जन॥

गाथा 366

अर्थात्, सच्चा प्रभु-भक्त या सन्त वह है जो केवल प्रभु से प्यार करता है, जिसके लिये शरीर, धन-सम्पत्ति, लोगों से मिलनेवाला सम्मान, यह सबकुछ तिनके के समान है। अन्य कोई प्रमाण ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

मृदु सबाह्य नवनीत। तैसें सज्जनाचें चित्त॥
ज्यासी आपंगिता नाहीं। त्यासि धरी जो हृदयीं॥...
तुका म्हणे सांगूं किती। तोचि भगवंताची मूर्ती॥

गाथा 347

अर्थात्, सन्तों का हृदय मक्खन जैसा होता है, बाहर से भी कोमल और अन्दर से भी कोमल। जिसे अपना कहनेवाला संसार में कोई भी न हो, उसे जो हृदय से लगाता है,... उसकी मैं कितनी महिमा करूँ? वह सचमुच प्रभु का प्रकट रूप होता है।

जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूति। देह कष्टविती उपकारें॥
भूतांची दया हे भांडवल संतां। आपुली ममता नाहीं देहीं॥
तुका म्हणे सुख पराविया सुखें। अमृत हें मुखें स्रवतसे॥

गाथा 1510

अर्थात्, जगत् का कल्याण करने में ही सन्तों की महानता है। वे जीवों के भले के लिये अपने शरीर को कष्ट देते हैं। वे प्राणियों के लिये दया के भण्डार होते हैं। उनमें अपनी देह के प्रति ममता नहीं होती। तुकाराम कहते हैं कि सन्त दूसरों के सुख में सुखी होते हैं और उनके मुख से अमृत बरसता है।

सन्त प्रभु के नाम का अखूट भंडार लिये संसार में आते हैं और जो सच्चे मन से उनसे प्रार्थना करते हैं, उन्हें वे मुफ़्त नाम देते हैं तथा उसके अभ्यास की विधि सिखाते हैं। जब मनुष्य का किसी सन्त से मिलाप होता है तो उस समय सन्त का जो तेज और उसके व्यक्तित्व की जो भव्यता उसे देखने को मिलती है, उसका आकर्षण उस सबसे कहीं अधिक होता है जो उसने दूसरों से सुन रखा होता है। अपने बारे में तुकाराम का कहना है:

आलो म्हणे तुका। मी नामाचा धारक॥

गाथा 519

अर्थात्, मैं नाम का भण्डारी बनकर संसार में आया हूँ।

एक अन्य अभंग में वे कहते हैं:

काय मीं पामर जाणे अर्थभेद।...
...वागवितों मुद्रा नामाची हे॥

गाथा 1007

अर्थात्, मैं नाचीज़ भला अर्थ की गहराई क्या जानूँ?...मैं तो प्रभु के नाम की मुहर सँभाले हुए हूँ।

अत्यधिक आनन्द की अवस्था में वे जिज्ञासुओं को नामदान के लिये इन शब्दों में अपने पास बुलाते हैं:

फोडिलें भांडारें। माप घेऊनियां खरें॥...
देशांत सुकाळ जाला हारपला काळ॥
घ्यावें धणीवरी। तुका म्हणे लाहान थोरीं॥

गाथा 3250

अर्थात्, मैंने नाम का भण्डार खोल दिया है और खुले हाथों नाम लुटा रहा हूँ।...प्रभु को पाने के इच्छुक लोगों के लिये अब देश में नाम का सुभिक्ष हो गया है और दुर्भिक्ष का अन्त हो गया है। छोटे-बड़े सब मेरे पास आओ और नाम का धन बटोर लो।

नाम

प्रभु का यह कौन-सा नाम है जिसकी तुकाराम तथा अन्य सन्त चर्चा करते हैं? प्रभु के सच्चे नाम को तुकाराम तथा अन्य सन्तों ने 'वर्ड' (word) 'लॉगॉस' (Logos) 'नाम', 'शब्द', 'नाद', 'कलमा', 'ताओ', 'अनाहत नाद', 'नाद-प्रवाह', 'प्रभु की सृजनात्मक शक्ति' तथा अन्य कई नामों से याद किया है। तुकाराम कहते हैं कि शब्द परमात्मा है। आओ उसका गौरव-गान करें, उसकी पूजा करें। (गाथा 3396)। एक अन्य अभंग में वे कहते हैं कि अनाहत ध्वनि सभी शरीरों के अन्दर गूँज रही है (गाथा 1789)।

अक्सर ऐसा समझा जाता है कि यह नाम भी केवल कोई लिखने और बोलने में प्रयुक्त होनेवाला शब्द (या शब्द-समूह) है जो शायद धर्म-ग्रन्थों से लिया गया है या जो गुरु के मुख से शिष्य को मिलता है, लेकिन यह सोलह आने सही नहीं है। यह नाम दो स्तरों पर काम करता है: मनुष्य के स्तर पर यह नामदान के समय पूरे गुरु के द्वारा जिज्ञासु को बताए गए वर्णात्मक नामों के रूप में काम करता है और इसका काम शिष्य के ध्यान को एकाग्र करके उसे प्रभु के निज-नाम के साथ, असली नाम के साथ, जोड़ना है। वह असली नाम, जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता, ध्वनि के रूप में, अलौकिक संगीत के रूप में, प्रभु के स्तर पर काम करता है। उस ध्वनि का स्रोत प्रभु स्वयं है और उसे आत्मा कानों की सहायता के बिना सुनती है। नामदान के अवसर पर सतगुरु के द्वारा दिये गए नामों का जाप शिष्य को प्रभु के सच्चे नाम तक पहुँचाता है जो हमारे द्वारा प्रभु को दिये गए अनेक नामों में से किसी जैसा भी नहीं है, क्योंकि वे सब तो वर्णनात्मक या गुणात्मक नाम हैं, जब कि यह असली नाम ध्वन्यात्मक है, शब्दात्मक है। जब तुकाराम तथा अन्य सन्त नाम की चर्चा करते हैं तो साधारणतया अभिप्राय शब्दात्मक नाम

से होता है, उस शक्ति से होता है जिसने सृष्टि की रचना की, जो सृष्टि में व्याप्त है और जिसके सहारे सृष्टि का अस्तित्व बना हुआ है। प्रभु का यह सच्चा नाम ही सबसे ऊँची आध्यात्मिक शक्ति है, केवल यही आत्मा को वापस परमात्मा के पास ले जा सकता है। तुकाराम कहते हैं:

राम म्हणतां तरे भवसिंधुपार। चुके वेरझार म्हणतां राम॥
तुका म्हणे हें सुखाचें साधन। सेवीं अमृतपान एका भावें॥
गाथा 1100

अर्थात्, प्रभु के नाम का सुमिरन करके जीव तैरकर भवसागर को पार कर जाता है, उसके आवागमन का अन्त हो जाता है। यही सच्चे सुख का एकमात्र साधन है। इस अमृत पर पूरा भरोसा रखते हुए इसका पान करो। अन्यत्र भी तुकाराम का कथन है:

तुटे मायाजाळ विघडे भवसिंधू। जरि लागे छंदु हरिनामें॥
गाथा 3113

अर्थात्, यदि मनुष्य का नाम से लगाव हो जाए तो माया-जाल कट जाता है और भवसागर भाप बनकर उड़ जाता है।

यह 'नाम' या 'शब्द' नामक शक्ति साधक के अन्दर प्रकाश और ध्वनि के रूप में प्रकट होती है। तुकाराम ने नाम की ध्वनि और प्रकाश का अपनी अनेक कविताओं में उल्लेख किया है। ध्वनि आत्मा को ऊपर की ओर खींचती है और प्रकाश उसका मार्ग आलोकित करता है। ये ध्वनि और प्रकाश एक ही शक्ति के, शब्द के, दो पहलू हैं। इस सम्बन्ध में अपना अनुभव तुकाराम इन शब्दों में व्यक्त करते हैं:

बैसोनिया तुका तळीं। त्या कल्लोळीं डौरला॥
गाथा 2542

अर्थात्, प्रभु के चरणों में बैठा तुकाराम शब्द की लहरों में डूब गया।

एक अन्य अभंग में वे कहते हैं:

माझिया मरणें जाली हे वसति। लागली ते ज्योती अविनाशा॥
गाथा 3502

अर्थात्, मेरे अहं के मर जाने से प्रभु मेरे अन्तर में आ बसा है और वहाँ अमर ज्योति जल उठी है।

एक अन्य अभंग में वे नाम की शक्ति का इन शब्दों में वर्णन करते हैं:

न कळे तें कळों येईल उगलें। नामें या विठ्ठलें एकाचिया॥
न दिसे तें दिसों येईल उगलें। नामें या विठ्ठलें एकाचिया॥
न बोलों तें बोलों येईल उगलें। नामें या विठ्ठलें एकाचिया॥
न भेटे तें भेटों येईल आपण। करितां चिंतन विठोबाचें॥
गाथा 3047

अर्थात्, जो समझ में नहीं आता उसे केवल प्रभु के नाम के सुमिरन द्वारा समझा जा सकेगा; जो दिखाई नहीं देता वह केवल प्रभु के नाम के सुमिरन द्वारा दिखाई देगा; जो अकथनीय है, उसे केवल प्रभु के नाम का सुमिरन करके व्यक्त किया जा सकेगा; जिससे मिलाप नहीं होता, प्रभु के नाम का चिन्तन करते रहने से वह अपने आप आकर तुमसे मिलेगा।

कलियुग में नाम के महत्त्व का उल्लेख तुकाराम यह कहते हुए करते हैं कि कलियुग में मुक्ति केवल प्रभु के नाम से होती है। (गाथा 2874)

नाम का अभ्यास

सतगुरु सच्चे जिज्ञासु को केवल नाम की दात ही नहीं देते, उसे इसकी साधना की विधि भी सिखाते हैं। नाम-साधना या नाम-भक्ति के तीन अंग हैं। पहला अंग है 'सुमिरन'—भौंहों के मध्य-बिन्दु पर ध्यान टिकाकर, गुरु के बताए प्रभु के वर्णात्मक नाम का जाप करना; दूसरा है 'ध्यान'—अन्तर में गुरु के स्वरूप का ध्यान करना और तीसरा, अन्तर में आ रही आवाज़ को सुनना, जिसे सन्तों की भाषा में 'भजन' कहा जाता है। ठीक विधि से अभ्यास करने से अन्तर में सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन होता है,

दिव्य ध्वनि सुनाई देती है तथा दिव्य प्रकाश दिखाई देता है। ध्वनि आत्मा को ऊपर की ओर खींचती है और प्रकाश प्रभु के धाम तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है। सतगुरु का आध्यात्मिक स्वरूप जिज्ञासु की आन्तरिक यात्रा में उसका सहायक होता है।

नाम की साधना एक कठोर तपस्या है। यह साधना वही कर सकता है जिसमें साहस तथा लगन हो और जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कृतनिश्चय हो। तुकाराम के वचन हैं:

तुका सुरा नहि सबदका रे। जब कमाइ न होय॥
चोट साहे घनकि रे। हिरा नीबरे तोय॥

गाथा 1186

अर्थात्, जब तक अभ्यासी डटकर कमाई नहीं करता, तब तक उसे शब्द-मार्ग का सूरमा नहीं कहा जा सकता। हथौड़े की चोटें सहने के बाद ही हीरे में पूरी चमक आती है।

तुकाराम यह भी कहते हैं कि अभ्यास, परिश्रम तथा दृढ़ संकल्प से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। जड़ कठोर चट्टानों में से भी रास्ता बना लेती है, रस्सी निरन्तर घिसाव से एक बड़े पत्थर को भी काट डालती है और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लेने पर विष भी पच जाता है। इसी तरह नित्य नियमपूर्वक की गई नाम-भक्ति प्रभु तक पहुँचा देती है (गाथा 1400)।

हमें प्रभु पर भरोसा रखना चाहिये। तुकाराम कहते हैं कि यदि तुम भरोसा रखोगे तो वह तुम्हें निराश नहीं करेगा। पर यह ज़रूरी है कि तुम उसे पाने के लिये उसी तरह परिश्रम करो जिस तरह संसार के पदार्थ पाने के लिये करते हो (गाथा 2659)।

सुमिरन

जब तक मनुष्य का ध्यान शरीर के नौ द्वारों के रास्ते संसार में फैला हुआ है, वह अन्तर में न तो दिव्य ध्वनि को सुन सकता है और न उस ज्योति को देख सकता है जो कभी नहीं बुझती। जब जिज्ञासु अपने ध्यान को नौ

द्वारों से हटाकर भौंहों के बीच में एकाग्र कर लेता है और सतगुरु के बताए प्रभु के नाम का जाप या सुमिरन करता है, तब उसकी अन्दर की आँख खुल जाती है और ध्वनि तथा ज्योति दोनों उसके अनुभव में आ जाती हैं।

तुकाराम के शब्दों में:

आंधाराचे अंगीं प्रकाशला रवी। फोडोनि पहावी डोळे प्रभा॥
न दिसे पहातां सूर्यप्रभातेज। जिवीं जीव निज पाहों नल्हे॥

छन्दबद्ध गाथा* 96

अर्थात्, अन्तर के अन्धकार में सूर्य प्रकाशमान है। आँख को फोड़कर (तीसरी आँख या तीसरे तिल के रास्ते अन्तर में प्रवेश करके) उस प्रकाश को देखो। अन्दर जाए बिना उस सूर्य के प्रकाश की चमक दिखाई नहीं देती और न ही जीव अपना वास्तविक स्वरूप देख सकता है।

प्रभु को पाने का केवल यही एक उपाय है। निरन्तर सुमिरन से प्रभु को याद करना ही सबसे अच्छी प्रार्थना है:

राम म्हणे करितां धंदा। सुखसमाधि त्या सदा॥
राम म्हणे वाट चाली। यज्ञ पाउलापाउलीं॥
राम म्हणे भोगीं त्यागीं। कर्म न लिंपें त्या अंगीं॥
ऐसा राम जपे नित्य। तुका म्हणे जीवन्मुक्त॥

गाथा 1096

अर्थात्, जो मनुष्य अपना काम-काज करते हुए प्रभु के नाम का सुमिरन करता रहता है, वह सदा समाधि के आनन्द में रहता है। जो चलते-फिरते प्रभु के नाम का सुमिरन करता रहता है, उसे पग-पग पर यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो सांसारिक वस्तुओं का भोग करते हुए भी और उनका त्याग करके भी प्रभु के नाम का सुमिरन करता है, उसके शरीर को कर्मों का फल

* छन्दबद्ध गाथा=श्री तुकाराम महाराज—यांच्या—अभंगाची छन्दबद्ध गाथा।

नहीं भोगना पड़ता। जो इस प्रकार सदा प्रभु के नाम के सुमिरन में लगा रहता है, वह जीते-जी मुक्त हो जाता है।

सुमिरन द्वारा ही शिष्य अपनी फैली हुई चेतना को समेटकर भौंहों के मध्य-बिन्दु पर ला सकता है, अन्तर में अनाहत नाद को सुन और दिव्य प्रकाश को देख सकता है तथा आध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ अन्ततः प्रभु से मिल सकता है जो उसकी साधना का लक्ष्य होता है। एक अभंग में तुकाराम कहते हैं:

नको कांहीं करूं अळस अंतरीं। जपें निरंतरी रघुपती॥
तुका म्हणे मोठा लाभ नरदेहीं। देहींच विदेही होती नामें॥
गाथा 4165

अर्थात्, आलस मत करो, अन्तर में निरन्तर प्रभु के नाम का सुमिरन करो। मनुष्य-शरीर का बड़ा लाभ यही है कि इसके मिलने पर नाम का सुमिरन करने से जीव को देह के रहते हुए भी उसकी सुध नहीं रहती, वह देह-रहित हो जाता है (सुमिरन से मनुष्य धुनात्मक नाम से जुड़कर देह के रहते हुए भी प्रभु से एकरूप हो जाता है।)

ध्यान और दर्शन

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एकाग्र मन से अन्तर में सतगुरु के स्वरूप को देखना 'ध्यान' कहलाता है। यदि शिष्य मन को सतगुरु के देह-स्वरूप पर टिकाता है—कल्पना में एकाग्रता से सतगुरु के देह-स्वरूप का ध्यान करता है—तो आध्यात्मिक यात्रा में उसका मार्गदर्शन करने के लिये उनका ज्योतिर्मय स्वरूप उसके अन्तर में प्रकट हो जाता है। यह सतगुरु का आन्तरिक दर्शन होता है। अन्तर में सतगुरु की सहायता के बिना प्रभु की प्राप्ति तो दूर रही, यात्रा में प्रगति भी असम्भव है। तुकाराम का कहना है कि आन्तरिक ध्यान ही सच्ची भक्ति है। जानने की इच्छा हो तो जान लो कि यही रहस्य की बात है (फ़ोकस ऑन तुकाराम, पृ. 10)। एक अंभग में वे कहते हैं:

सुखाचें ओतलें। दिसे श्रीमुख चांगलें।

अर्थात्, मुझे जब सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन होता है तो मेरे आनन्द की सीमा नहीं रहती। एक अन्य अभंग में उनके वचन हैं:

सर्वकाळ माझे चित्तीं। हेचि खंती राहिली॥
बैसलें तें रूप डोळां। वेळोवेळां आठवे॥
वेव्हाराची सरली मात। अखंडित अनुसंधान॥
तुका म्हणे वेध जाला। अंगा आला श्रीरंग॥
गाथा 1515

अर्थात्, मेरे हृदय में हर समय विरह की व्यथा बनी रहती थी। आपका वह (ज्योतिर्मय) स्वरूप मेरी आँखों में समा गया था और मैं सदैव उसकी याद में डूबा रहता था। सांसारिक आचार-व्यवहार मेरे लिये समाप्त हो गया था। उस स्वरूप में मेरा अखण्ड ध्यान लगा रहता था। तुकाराम कहते हैं कि जब मेरा हृदय इस तरह बिंध गया, तो प्रभु मेरे अन्दर प्रकट हो गया।

भजन

प्रभु के नाम के निरन्तर सुमिरन से शिष्य को अन्तर में प्रकाश दिखाई देता है, ध्वनि सुनाई देती है और सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन होता है। ध्वनि को सुनना 'भजन' कहलाता है। तुकाराम ने इसे 'कीर्तन' कहा है। तुकाराम कहते हैं कि अन्तर में सुनाई देनेवाली यह ध्वनि या नाद ही प्रभु की वह शक्ति है जो आत्मा को उसके स्रोत प्रभु से मिलाती है। वे हमें प्रेरणा देते हैं कि कलियुग में इस नाद को सुनो। तभी तुम प्रभु से मिल सकोगे (गाथा 96)।

एक अभंग में उनके वचन हैं:

दास जालों हरिदासांचा। बुद्धिकायामनेंवाचा॥
तेथें प्रेमाचा सुकाळ। टाळमृदंगकल्लोळ।
नासे दुष्टबुद्धि सकळ। समाधि हरिकीर्त्तनीं॥...
हें सुख ब्रह्मादिकां। म्हणे नाहीं नाहीं तुका॥
गाथा 1122

अर्थात्, प्रभु के दास (अपने सतगुरु) का मनसा, वाचा, कर्मणा दास बन जाने पर मेरे हृदय में प्रभु का प्रेम उमड़ पड़ा और मुझे अन्तर में झाँझ तथा मृदंग की ऊँची आवाज़ें सुनाई देने लगीं। जब नाद को सुनने से साधक की समाधि लग जाती है तो उसके सभी दूषित विचार लुप्त हो जाते हैं। ...तुकाराम कहते हैं कि यह सुख ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं को उपलब्ध नहीं है।

एक अन्य अभंग में तुकाराम कहते हैं कि जो अनाहत नाद के नशे में मस्त हो जाता है, उसे अपने शरीर की होश नहीं रहती:

मदे मातें तया नाहीं देहभाव॥

गाथा 1637

एक अभंग में तुकाराम ने नाम के लिये 'महावाक्य' शब्द का प्रयोग किया है और इसे कानों का भूषण बताया है:

सद्गुरुनें कानीं महावाक्यध्वनी। कुंडले श्रवणीं लेवविली॥

छन्दबद्ध गाथा 24

अर्थात्, सतगुरु ने मेरे कानों में नाम की ध्वनि डालकर मानो उन्हें कुण्डल पहना दिये हैं। स्पष्ट है कि तुकाराम की दृष्टि में जैसे वर्णात्मक नाम बाहरी कानों का आभूषण है, वैसे ही धुनात्मक नाम आन्तरिक कानों का। 'महावाक्य' शब्द से नाम के दोनों पक्ष अभिप्रेत समझने चाहियें।

जीते-जी मरना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वर्णात्मक नाम के जाप या सुमिरन से ही शरीर के कण-कण में व्याप्त चेतना को समेटकर भौंहों के मध्य में लाया जाता है। इसी से भक्त को आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। कबीर साहिब, दादू दयाल जी, पलटू साहिब, सन्त नामदेव तथा अन्य सन्तों की तरह तुकाराम ने भी शरीर को ख़ाली करके चेतना को भौंहों के मध्य में लाने की प्रक्रिया को 'जीते-जी मरना' कहा है। इस प्रकिया को सन्तों ने यह नाम इसलिये दिया

है कि इसके पूर्ण होने पर अभ्यासी के किसी भी अंग में चेतना नहीं होती। परन्तु इसमें आत्मा शरीर को सदा के लिये नहीं छोड़ती, बल्कि अभ्यास की समाप्ति पर शरीर में लौट आती है। शरीर को इस तरह ख़ाली करके ही साधक अपने अहं को मिटा सकता है और प्रभु को पा सकता है। एक अभंग में तुकाराम कहते हैं:

एका वेळे केलें रितें कलिवर। आंत दिली थार पांडुरंगा॥
पालन पोषण लागलें ते सोई। देहाचें तें काई सर्वभावें॥
माझिया मरणें जाली हे वसति।

गाथा 3502

अर्थात्, मैंने जब एक बार शरीर को ख़ाली कर दिया तो अपने अन्दर प्रभु के लिये स्थान बना दिया। अब मेरे शरीर के पालन-पोषण की तथा अन्य सभी प्रकार की ज़िम्मेदारी प्रभु ने अपने ऊपर ले ली है। मेरे अहं के मर जाने से प्रभु मेरे अन्दर आ बसा है।

मन

यदि परमात्मा मनुष्य से दूर नहीं है, उसके शरीर में ही वास करता है तो उसे पाना इतना कठिन क्यों है? आध्यात्मिक मार्ग में मनुष्य के सामने आनेवाली दो सबसे अधिक प्रबल बाधाएँ मन और माया हैं। विशेष बात यह है कि आध्यात्मिक उन्नति करने के लिये हम सबको काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या तथा अहंकार—इन दूषित भावनाओं से संघर्ष करना पड़ता है। इन प्रबल मनो-विकारों का पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, परन्तु इन पर विजय पाने के उपाय पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये यहाँ फिर से उनकी चर्चा की जा रही है।

मन बहुत शक्तिशाली है। जैसा कि एस. जी. तुळपुळे ने कहा है, आध्यात्मिक अभ्यास करनेवाले किसी भी जिज्ञासु के मार्ग में आनेवाली सबसे पहली बाधा विविध मनोवेगों का आविर्भाव है जो योगाभ्यास को भंग कर देता है (द डिवाइन नेम, पृ. 124)।

मन का संसार के पदार्थों और सुखों से गहरा लगाव है। यह संसार के मिथ्या आकर्षणों के पीछे भागता है। यह स्वभाव से चंचल है और सांसारिक सुख की खोज में रहता है। तुकाराम के शब्दों में सांसारिक सुख मृगतृष्णा के समान है, यह कभी सच्चा नहीं होता (गाथा 1421)।

मन सांसारिक सुख की अस्थिरता को कभी स्वीकार नहीं करता और इसलिये संसार की ख़ुशियों के पीछे भागता रहता है। इसे हर समय किसी न किसी चीज़ की इच्छा रहती है, सो इसे स्थायी शान्ति कभी नहीं मिलती। मन के वश में होकर किये गए कर्म जिज्ञासु की संसार के प्रति आसक्ति को और प्रबल बनाते हैं। कर्मफल के नियम के अधीन हम अपने अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार संसार में भिन्न-भिन्न योनियों में बार-बार जन्म लेते हैं। तुकाराम का कथन है कि मन के विचारों से भी कर्म बनते हैं:

जें जें व्हावें संकल्पें। तेचि पुण्य होय पाप॥

गाथा 4030

तो फिर समस्या का समाधान कैसे हो? मन को ठीक दिशा में कैसे मोड़ा जाए? मन बहुत बुरा स्वामी परन्तु बहुत अच्छा मित्र है। समस्या का समाधान यह है कि इससे मित्रता की जाए और सांसारिक सुखों से अधिक अच्छी, अधिक ऊँचे दर्जे की और अधिक रुचिकर कोई चीज़ देकर इसे अपना सेवक बना लिया जाए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इसे कोई इतनी आकर्षक चीज़ दे दी जाए कि इसकी और किसी चीज़ में रुचि ही न रहे।

अन्य सन्तों की तरह तुकाराम का भी यही कहना है कि मन को जब नाम, शब्द या ईश्वरीय अमृत मिल जाएगा तो यह सदा के लिये तृप्त हो जाएगा। मन की स्वच्छन्दता और उसके दोषों तथा लालसाओं का शब्द ही एकमात्र अचूक उपचार है। हर समय शब्द को सुनने के लिये बेचैन जिज्ञासु की सांसारिक पदार्थों से विरक्ति का उल्लेख करते हुए तुकाराम कहते हैं:

अनुहातीं गुंतला नेणे बाह्य रंग। वृत्ति येतां मग बळ लागे॥

गाथा 1637

अर्थात्, जो अपने अन्दर गूँजनेवाले अनाहत नाद को सुनने में तल्लीन हो जाता है, वह बाहरी रंग-तमाशों की परवाह नहीं करता। अपना ध्यान बाहर लाने के लिये उसे प्रयास करना पड़ता है।

सतगुरु की बताई विधि के अनुसार डटकर नाम का अभ्यास करने से जिज्ञासु मन का सहयोग प्राप्त कर सकता है और कर्मों के बन्धन से छूटकर प्रभु को पा सकता है।

दूषित भावनाएँ

मन से सम्बन्धित हमारी मूलभूत समस्या यह है कि मन भ्रमवश असत्य को सत्य समझ लेता है। इस कारण यह हमारे सामने कई बाधाएँ खड़ी कर देता है जिन्हें हमें पार करना पड़ता है। इन बाधाओं का 'दूषित भावनाओं' के नाम से पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और ये बाधाएँ हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार। प्रभु तक पहुँचने के लिये जिज्ञासु को इनके साथ निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है।

मन को विषयभोग के विचारों से दूर रखने के लिये तुकाराम जिज्ञासु को परामर्श देते हैं कि एकान्त में नारी से बातचीत मत करो (गाथा 2846)।

एक अभंग में वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि मुझे अन्य स्त्रियों की संगति मत दो।... उनके कारण मैं तुम्हें भूल जाता हूँ और मुझसे भक्ति नहीं होती। इस मन को वश में नहीं किया जा सकता।... सौन्दर्य दुःख का कारण होता है:

स्त्रियांचा तो संग नको नारायणा।...
नाठवे हा देव न घडे हे भजन। लांचावलें मन आवरे ना॥
... लावण्य तें खरें दुःख मूल॥

गाथा 523

तुकाराम तथा अन्य सभी सन्तों का कहना है कि चिन्ता तथा दुःख दूर करने का उपाय अपनी आवश्यकताओं को कम करना है। तुकाराम के वचन हैं:

एक शेरा अन्ना चाड।...
औट हाथ तुझा जाग। येर सिणसी वाउगा॥
तुका म्हणे श्रम। एक विसरतां राम॥

गाथा 2016

अर्थात्, मनुष्य को खाने के लिये प्रतिदिन एक सेर अन्न की और सोने के लिये साढ़े तीन हाथक जगह की ही आवश्यकता होती है। बाक़ी सब कुछ तो अनावश्यक होता है। फिर और चीज़ें पाने के लिये परिश्रम करते हुए प्रभु को क्यों भुलाया जाए?

प्रभु-भक्त को संसार में कैसा जीवन बिताना चाहिये, इस सम्बन्ध में तुकाराम का कहना है कि उसे संसार में रहते हुए भी इसकी बुराइयों से अछूता रहना चाहिये, जैसे कमल का पत्ता पानी में रहते हुए भी उसकी बूँदों से अछूता रहता है। यदि उसकी निन्दा या प्रशंसा हो रही हो तो वह उसे सुनकर भी इस तरह अनसुनी कर दे जैसे वह एक योगी की तरह समाधि की अवस्था में हो। संसार को देखते हुए भी वह इसे अनदेखा कर दे, सृष्टि को वह स्वप्न-तुल्य जाने:

मग यी व्यवहारी असेन वर्तत। जेवीं जळाआंत पद्मपत्र॥
ऐकोनि नाइकें निंदास्तुति कानीं। जैसा कां उन्मनी योगिराज॥
देखोनि न देखें प्रपंच हा दृष्टी। स्वप्नींचिया सृष्टि चेविल्या जेवीं॥

गाथा 2967

ऐसा हम तब ही कर सकते हैं जब हम अहंकार से छुटकारा पा लें जो सब दूषित भावनाओं का मूल कारण है। तुकाराम कहते हैं कि यदि अहंकार और आशा का समूल नाश हो जाए तो मनुष्य का सारा शरीर चिन्तामणि बन जाता है।... उसका मन स्फटिक मणि के समान निर्मल हो जाता है (गाथा 53)।

दूषित भावनाएँ जिज्ञासु पर आक्रमण करके उसे आध्यात्मिक मार्ग से दूर खींच ले जाती हैं। तुकाराम हमें नाम के अस्त्र से इन शत्रुओं पर जवाबी

हमला करने की सलाह देते हैं। हमारे ऐसा करने से काम का स्थान शील ले सकता है, क्रोध का क्षमा तथा सहनशीलता, लोभ और ईर्ष्या का सन्तोष, मोह का विवेक तथा अहंकार का नम्रता। हमें प्रभु की इच्छा के आगे सिर झुकाकर नाम के अस्त्र का प्रयोग करना चाहिये। यह अस्त्र मुफ़्त मिलता है। यह प्रभु की दात होता है। इससे सम्बन्धित अपने अनुभव का वर्णन करते हुए तुकाराम कहते हैं:

काम क्रोध लोभ निमाले ठायींचि। सर्व आनंदाची सृष्टि जाली॥...
तुका म्हणे भाग्य यां नांवें म्हणीजें।

गाथा 4303

अर्थात्, प्रभु के नाम के कारण मेरा भाग्य जाग उठा है। काम, क्रोध तथा लोभ, सब ठण्डे पड़ गए हैं और सब जगह आनन्द ही आनन्द है।

एक अन्य अभंग में तुकाराम के शब्द हैं:

दिली तिळांजुळी कुळनामरूपांसी। शरीर ज्याचें त्यासी समर्पिलें॥
तुका म्हणे रक्षा जाळी आपींआप। उजळला दीप गुरुकृपा॥

गाथा 2668

अर्थात्, मैंने कुल, नाम और रूप के बारे में सोचना छोड़ दिया है और शरीर प्रभु को समर्पित कर दिया है जिसका यह वास्तव में है। अब अहंकार जलकर राख हो गया है, क्योंकि अन्तर में सतगुरु की कृपा से नाम का दीपक जल उठा है।

चिन्ता, आलस्य, निद्रा और अधिक खाना

प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में आनेवाले जिन अन्य विघ्नों का तुकाराम ने उल्लेख किया है, वे हैं चिन्ता, आलस्य, निद्रा और अधिक खाना। चिन्ता के बारे में उनका कहना है कि जीवन में कभी सुख आता है, कभी दु:ख। इनके विषय में अधिक मत सोचो। इन्हें समान समझो (गाथा 2819)। वे हमें सलाह देते हैं कि जीवन में जो कुछ भी तुम्हारे सामने आता है, उसका सामना करो।

प्रभु को दोष मत दो। फिर वह तुम्हारी सँभाल करेगा (गाथा 2396)। प्रभु में पूरा विश्वास रखते हुए हमें सब चिन्ताएँ छोड़ देनी चाहियें। एक अभंग में तुकाराम कहते हैं:

पाषाणाचें पोटीं बैसला दर्दुर। तया मुखीं चार कोण घाली॥
पक्षी अजगर न करी संचित। तयासी अनंत प्रति पाळी॥
तुका म्हणे तया भार घातलिया। उपेक्षीना दयासिंधु माझा॥
गाथा 602

अर्थात्, पत्थर के अन्दर एक मेंढक होता है। उसके मुख में भोजन कौन डालता है? पक्षी और अजगर भोजन इकट्ठा करके नहीं रखते। उनका पालन भी अनन्त परमेश्वर करता है। जब तुम अपना सारा भार परमेश्वर पर डाल दोगे तो वह तुम्हारी उपेक्षा नहीं करेगा।

तुकाराम आलस्य, निद्रा तथा अधिक खाने की भी निन्दा करते हैं क्योंकि ये आध्यात्मिक प्रगति के लिये हानिकारक होते हैं। उनके कथनानुसार निद्रा तथा आलस्य से कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। आलस्य बहुत बड़ा शत्रु है। यह सांसारिक जीवन को भी बरबाद कर देता है। फिर इससे प्रभु की प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसे जीतना ही पड़ता है, जिसका एक उपाय कम खाना है (भक्तिचा डांगोरा, पृ. 44)। तुकाराम हमसे अधिक न सोने और कम खाने को कहते हैं और समझाते हैं कि ऐसा करना प्रभु का कृपा-पात्र बनने और उसका दर्शन करने में सहायक होता है (गाथा 2846)। हमारा आहार सादा होना चाहिये। भारी भोजन मनुष्य को आलसी बनाता है। दो पंक्तियों की एक छोटी सी कविता में तुकाराम के वचन हैं:

तुका और मिठाई क्या करूं रे। पाले बिकारपिंड॥
राम कहावे सो भली रुखी। माखन खांडखीर॥
गाथा 1202

अर्थात्, किसी दूसरी मिठाई का मैं क्या करूँगा? उससे तो केवल बीमारियों से भरे शरीर का पोषण होता है। रूखी-सूखी रोटी ही अच्छी। मेरे

लिये तो वह मक्खन, खाँड और खीर के समान मीठी होती है, क्योंकि वह प्रभु के नाम का जाप करवाने में सहायक होती है।

नैतिक आचरण

अन्य सन्तों की तरह तुकाराम का भी कहना है कि नाम का अभ्यास अथवा प्रभु-भक्ति और नैतिक आचरण, आत्मानुशासन तथा अन्तर की सफ़ाई साथ-साथ चलते हैं। वे भी सच बोलने, हक़-हलाल की कमाई पर गुज़ारा करने, दूसरों की निन्दा न करने, उचित सामाजिक आचरण करने और पति तथा पत्नी के प्रति वफ़ादार रहने, शाकाहारी होने और प्रभु के जीवों की हत्या तथा मादक द्रव्यों का सेवन न करने के सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं। उनके विचार में भी प्रभु-प्राप्ति के लिये जीव का इन शर्तों को पूरा करना ज़रूरी है। वे प्रश्न करते हैं कि यदि तुम पराये धन की इच्छा नहीं करते, दूसरों की निन्दा नहीं करते और पराई स्त्री के साथ इस तरह का व्यवहार करते हो जैसे वह तुम्हारी माता या बहिन हो तो तुम्हारा क्या जाता है?... तुम सन्तों के वचनों पर विश्वास क्यों नहीं करते? सच बोलने के लिये क्या आयास करना पड़ता है? इन सीधी-सादी बातों से तुम्हारा प्रभु से प्रेम हो जाएगा (गाथा 61)।

निन्दक की व्यंग्यात्मक प्रशंसा करते हुए तुकाराम एक अभंग में कहते हैं कि वह हमारा बहुत बड़ा उपकार करता है। वह अपने शब्दों के साबुन से हमारे पापों की मैल को धो डालता है, पर हमसे साबुन का दाम नहीं लेता। वह ऐसा मज़दूर है जो मुफ़्त हमारा काम करता है और व्यर्थ ही हमारा भार ढोता है। वह हमें तो भवसागर के पार ले जाता है और स्वयं नरक में जाता है:

असो खळ ऐसे फार। आम्हां त्यांचे उपकार॥
करिती पातकांची धुणी। मोल न घेतां साबणीं॥
फुकाचे मजुर। ओझें वागविती भार॥
पार उतरुन म्हणे तुका। आम्हां आपण जाती नरका॥
गाथा 1723

तुकाराम मांस-भक्षण का प्रबल विरोध करते हैं और हमें चेतावनी देते हैं :

आत्मा नारायण सर्वां घटीं आहें। पशुमध्यें काय कळों नये॥
देखत हा जीव हुंबरे वरडत। निष्ठुराचे हात वाहाती कैसे॥
तुका म्हणे तया चांडाळासी नर्क॥

गाथा 4178

अर्थात्, परमात्मा तो आत्मा के रूप में सब शरीरों में विद्यमान है। क्या हत्यारे की समझ में यह बात नहीं आती कि परमात्मा पशुओं में भी है? पशु को चीख़ता-चिल्लाता देखकर भी निर्दयी का हाथ उसके गले पर कैसे चलता है? ऐसा चाण्डाल निश्चित रूप से नरक में जाएगा।

अन्दर की मैल को दूर करनेवाले उपरोक्त नियमों का पालन करने का एकमात्र उद्देश्य यही होता है कि जिज्ञासु हानिकारक प्रबल मनोविकारों का शिकार न हो और उसकी मनोदशा ऐसी रहे कि वह भक्ति-भाव के साथ नाम का अभ्यास कर सके। जिज्ञासु को कठोर अनुशासन की ये सब सख़्तियाँ झेलनी ही पड़ती हैं। तुकाराम कहते हैं :

एका बीजा केला नाश। मग भोगलें कणीस॥...
लाभ नाहीं फुका साठीं। केल्याविण जीवासाठीं॥

गाथा 767

अर्थात्, हमें खाने के लिये अनाज तभी मिलता है यदि बीज नष्ट हो जाए, उसका अस्तित्व मिट जाए।...प्रभु की प्राप्ति भी अपने जीवन की बलि देने से होती है, प्रभु मुफ़्त नहीं मिलता।

सत्संग और भक्तों की संगति

तुकाराम सत्संग में जाने और सन्तों तथा उनके भक्तों की संगति करने का बहुत लाभ बताते हैं। आप हमें समझाते हैं कि इससे जिज्ञासु का सतगुरु तथा उनकी शिक्षा में विश्वास और प्रभु के लिये प्रेम तथा भक्ति-भाव बढ़ता है। उनके यह कहने से कि परमात्मा सत्संग में उपस्थित रहता है (गाथा 2929) पता चलता है कि सत्संग में जाना हमारे लिये कितना महत्त्व रखता है।

सत्संग की तुलना जल-प्रवाह से की जाती है जिसमें पड़ा पत्थर पिघलता तो नहीं, पर ताप से बचा रहता है। इसे जंगली जानवरों से बचाव के लिये फ़सल के चारों ओर लगाई गई बाड़ के तुल्य भी बताया जाता है क्योंकि यह कुसंगति तथा हमारी अपनी ही दुर्बलताओं से हमारी रक्षा करता है।

सन्तों की संगति जिज्ञासु के अन्तर के मल को धोती है और उसे ऊपर उठाती है। तुकाराम कहते हैं कि तीन गुणों की आग को केवल सन्तों की संगति ही शान्त कर सकती है (गाथा 1260)। वे यह भी कहते हैं कि सन्त संसार में केवल मनुष्यों का उद्धार करने के लिये आते हैं और यह भी कि सन्तों के शब्द आध्यात्मिकता के प्यासों के लिये अमृत के तुल्य होते हैं (गाथा 1510)। सन्तों की संगति को तुकाराम किसी भी तीर्थ से अधिक पवित्र मानते हैं। वे जहाँ सन्तों की संगति की सराहना करते हैं, वहाँ जिज्ञासुओं को दुर्जनों की संगति से दूर रहने का परामर्श भी देते हैं।

सारांश

तुकाराम की शिक्षा का सारांश यह है कि परमात्मा विचार-विमर्श या कल्पना करने की नहीं, अनुभव करने की, अन्तर में प्रत्यक्ष दर्शन करने की, चीज़ है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य ही उसे ढूँढ़ निकालने और जानने के लिये परिश्रम करना है। केवल कोई सच्चा गुरु ही हमें यह लक्ष्य सिद्ध करने की क्षमता प्रदान कर सकता है। इसलिये जिज्ञासु को पहले सच्चे गुरु की खोज करनी चाहिये, और फिर उससे नामदान मिल जाने के बाद उसके निर्देशों का पालन करते हुए उसकी शिक्षा को पूरी तरह से अपना लेना चाहिये। उसे सत्संग में जाना चाहिये और प्रभु के सच्चे भक्तों की संगति में रहना चाहिये ताकि अभ्यास में सहायक होनेवाला वातावरण मिले। उसे दुनिया के धन्धों में उलझे हुए मन वाले लोगों की संगति से बचना चाहिये और अनुशासन-पूर्ण निर्मल जीवन बिताना चाहिये ताकि वह मन पर विजय पा सके तथा अपनी दुर्बलताओं को वश में कर सके। तब ही वह अपने बिखरे हुए ध्यान को एक स्थान पर टिका सकेगा और पूरी तरह मन लगाकर अभ्यास कर सकेगा। भक्ति-भाव के साथ की गई साधना उसे प्रभु से मिला देगी।

संकलित अभंग

जो चाहे, हक़ है उसको

प्रसाद* मिला तुम्हें प्रभु से,
तुम कर लो इसका सेवन।
सुरगण भी इसे न पाते,
अधिकारी विरले ही जन॥

इसमें तो ब्रह्मानन्द है,
तुम जानो तुच्छ न इसको।
हर किसी का पात्र भरा है,
जो चाहे, हक़ है उसको॥

वह सर्व-समर्थ है दाता,
है पास ही सबके रहता।
वह इच्छा-पूरक सबकी
इच्छाएँ पूर्ण है करता॥

कितना ही सेवन कर लें,
नहीं पात्र रिक्त कभी होता।
जब-जब हैं इसको पीते,
मन उत्सुक अधिक है होता॥

तुका, प्रसाद यह अनुपम,
तैयार लक्ष्मी करती।
बनी सेविका देवी
स्वयं है इसे परसती॥†

देवाच्या प्रसादें करा रे भोजन
गाथा 40

---

* **प्रसाद**—शब्दामृत से अभिप्राय है।

† **प्रसाद...परसती**=भाव यह है कि यह प्रसाद मनुष्य के लिये एक बहुमूल्य धन है।

मन! जागते क्यों नहीं रहते

मन! जागते क्यों नहीं रहते
करने को भक्ति प्रभु की।
समय व्यर्थ गँवाया तुमने,
कमी पूरी कैसे होगी॥

आख़िर वे छोड़ ही देंगे,
तुम फँसे हुए हो जिनमें।
तुका, सोचो क्या है उत्तम,
है लाभ तुम्हारा किसमें॥

हरीच्या जागरणा
गाथा 42

चाह मिटी, मोह से पिण्ड छूटा

इच्छा नहीं रही अब कोई,
जग से मैं हो गया विरक्त।
चाह मिटी, मोह से पिण्ड छूटा,
मरण के भय से भी अब मुक्त॥

स्थान रहे मेरा नीचे ही,
या करूँ सवारी घोड़े पर।
रखेगा जैसे भी, रह लूँगा,
काम जो तेरा, छोड़ा तुझपर॥

मान-अपमान से उठ गया ऊपर,
सुख-दुख की परवाह ना कोई।
तुका कहे, मन में अब मेरे
चिन्ता बाक़ी रही ना कोई॥

आम्ही तरी आस
गाथा 47

मुझे नहीं कोई अन्तर पड़ता

मेरी कोई निन्दा करता है,
या शंसा*, सम्मान है करता।
मैं परवाह नहीं करता हूँ,
मुझे नहीं कोई अन्तर पड़ता॥

जो कुछ भी मुझे भोगना पड़ता,
अपनी करनी का फल होता।
जीवन में जो भी घटता है,
अच्छा मेरे लिये है होता॥

अर्पित मैंने अपना सब कुछ
कर दिया है हरि-चरणों में ही।
मेरे जीवन में अब जो हो,
तुका कहे, सँभाले हरि ही॥

निंदी कोणी मारी
गाथा 48

* **शंसा**=प्रशंसा।

तीर्थों में वह महातीर्थ है

अहंकार का, इच्छाओं का,
  समूल नाश जब हो जाता।
चिन्तामणि*-सम इच्छा-पूरक
  तब नर-तन है हो जाता॥

देह न अपने आपको समझे,
  करे ना निन्दा, हिंसा, छल।
स्फटिक मणि-सा बहुमूल्य वह,
  अन्दर बाहर से निर्मल॥

काशी-यात्रा करे वह क्योंकर,
  जाते उसके पास सभी जन।
तीर्थों में वह महातीर्थ है,
  मिले मोक्ष जो करें दर्शन॥

मन जो उसका है अब निर्मल,
  माला फेरे क्या होगा।
इस निर्मलता में सब भूषण,
  भूषण पहने क्या होगा॥

* चिन्तामणि पुराणों में चर्चित एक मणि है जिसके विषय में यह कहा जाता है कि यह जिसके पास हो, उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण कर देती है। यहाँ शरीर को चिन्तामणि इसलिये कहा गया है कि जिसकी सब सांसारिक इच्छाएँ मिट जाएँ, उसकी केवल एक ही इच्छा शेष रह जाती है और वह है प्रभु-प्राप्ति की इच्छा जो मनुष्य-शरीर के अन्दर ही पूरी होती है।

हरि के हर पल गुण गाता है,
  रहे आनन्दित उसका मन।
आशा शेष रही ना कोई,
  तन, मन, धन, सब हरि अर्पण॥

मूल्यवान् ऐसा व्यक्ति तो
  होता पारस से बढ़कर।
कहे तुका, उसकी महिमा का
  वर्णन भला करूँ क्योंकर॥

सकळ चिंतामणी शरीर
गाथा 53

उससे क्या कुछ खो देगा तू

पर स्त्री को समझ तू माता,
  कितना पैसा लग जाएगा।
चाह न पर धन, तज पर-निन्दा,
  बोल तो, तेरा क्या जाएगा॥

बैठे-बैठे नाम जो सुमिरे,
  उससे क्या थक जाएगा तू।
सन्त जो कहते, सच माने तो
  उससे क्या कुछ खो देगा तू॥

सच कहने में कष्ट नहीं कुछ,
  ख़र्च भी इसमें क्या होगा।
करे जो इतना, प्रभु पाने को
  और न कुछ करना होगा॥

पराविया नारी माउलीसमान
गाथा 61

सन्तोष हो जो मन में

सन्तोष हो जो मन में
  लगता है विष भी सोना।
यदि अत्यधिक है वस्तु
  तो भला क्या है होना॥

भले आदमी! यह समझो
  कि अहित ही होगा उससे।
  अधिक क्या कहूँ मैं तुमसे॥

तुका, यदि मन हो आकुल,
  चन्दन भी अंग जलाए।
कितने ही करो उपाय,
  मन को चैन ना आए॥

चित्त समाधानें
गाथा 63

थोथी बातें

ईश्वर की याद में ना जो
  आँखों में आँसू आएँ।
मिलने के लिये ना उससे
  यदि हृदय विकल हो जाए॥

तो उसकी चर्चा को तुम
  थोथी बातें ही समझो।
मनोरंजन-हित लोगों के
  की गई बकवाद ही समझो॥

प्रभु प्रकटे नहीं अन्तर में,
  सब बातें निष्फल जानो।
यदि हुए न आमने-सामने,
  तुका कहे, भेंट ना मानो॥

न ये नेत्रां जळ
गाथा 82

पूँजी साथ यह जाएगी

महाबली से भी यदि मैत्री,
  अन्त में काम ना आएगी।
पहला काम यह, नाम जपो तुम,
  पूँजी साथ यह जाएगी॥

नहीं जपोगे नाम अगर तुम,
  धर्मराज से नहीं बचोगे।
काल नहीं कुछ भी छोड़ेगा,
  धन जोड़कर क्या पा लोगे॥

काम नहीं आता परिवार,
  सेना-सम भी यदि विशाल।
शेख़ी मार लो तुम शक्ति की
  जब तक ना आ जाए काल।
तुका कहे, चौरासी में से
  खुद को, प्यारे, लो निकाल॥

मैत्र केले महा बळी
गाथा 86

आगे भी जुते रहोगे

सुख पाते जीवन में
  जौ के दाने जितना।
ढेर जो दुख का मिलता,
  विशाल वह पर्वत जितना॥

आधा जीवन सोते,
  बचपन लेता कुछ हिस्सा।
रोगों भरा बुढ़ापा
  खा जाए भाग कुछ इसका॥

कहे तुका, सन्त कहते,
  जो भक्ति नहीं करोगे।
आवागमन है कोल्हू,
  आगे भी जुते रहोगे॥

सुख पाहतां जवापाडें
गाथा 88

धर्म कमाया नाहीं

धर्म-कार्य तो करते हो तुम
  चावल औ तिल दहकर।
विकार सभी पहले की भाँति
  भरे तुम्हारे अन्दर॥

व्यर्थ ही कष्ट उठाते इतना,
  प्रभु-भक्ति नहीं करते।
मान दिखावे की ही ख़ातिर
  धर्मग्रन्थ हो पढ़ते॥

तीर्थ-भ्रमण, तपश्चर्या से
  अहंकार है बढ़ता।
दान जो देते उससे भी तो
  हौंमैं ही है पलता॥

मर्म नाम के सुमिरन का तुम
  नहीं जानते भाई।
तुका कहे, यह सब करके भी
  धर्म कमाया नाहीं॥

तीळ जाळिले तांदुळ
गाथा 90

सो दौड़, बचा अब मुझको

कष्टों से इस संसार के
मैं गया बुरी तरह जल।
सेवा में निज कुटुम्ब की
परेशान हूँ मैं हर पल॥

होकर हताश तभी तो
मैं आया शरण में तेरी।
प्रभु! तू ही मेरी माता,
आ शीघ्र, रक्षा कर मेरी॥

कर्मों का कई जन्मों के
सिर पर ढोता हूँ भार।
यह रहस्य नहीं विदित है
कैसे पाऊँ निस्तार॥

चोरों से घिरा हुआ हूँ
मैं अन्दर भी बाहर भी।
दया किसी को मुझ पर
नहीं आती है फिर भी॥

लंगड़ा हूँ, लुट गया हूँ,
तुका, कब का दुखी हूँ मैं।
तू दीनानाथ, विरद यह,
सो दौड़, बचा अब मुझको॥

संवसारतापें तापलों मी देवा
गाथा 91

रेत दिखे जल, मृग जल समझे

रेत दिखे जल, मृग जल समझे,
पीने भागे मरते दम तक।
जान-बूझकर आत्मघात क्यों,
जल्दी सोचो क्या है हितकर॥

एक योनि से दूसरी योनि
संचित कर्म हमें ले जाते।
कर्म जो हमने किये हुए हैं,
उनका ही फल हम हैं पाते॥

डींग मारते हो जिस देह की,
वह मरघट तक ही जाएगी।
कहे तुका, उसे आग दहेगी,
बस, राख शेष रह जाएगी॥

मृगजळ दिसे साचपणा
गाथा 99

भला तुम्हारा इसमें ही है

मेरी है यह सम्मति तुमको,
अब न गँवाओ जीवन अपना।
पड़ता हूँ मैं पाँव तुम्हारे,
कर लो मन अब तो शुद्ध अपना॥

भला तुम्हारा इसमें ही है,
मन एकाग्र औ प्रभु में ध्यान।
तुका कहे, क्या अन्य सीख दूँ,
वही करो जिसमें कल्याण॥

आतां तरी पुढें हा चि उपदेश
गाथा 101

नहिं काल का चक्र चलेगा

मान-अपमान की अपने
तुम गठरी एक बना लो।
और फिर उस गठरी को तुम
एक कोने में सरका दो॥*

सन्तुष्ट तुम सदा रहोगे,
प्रभु दर्शन तुमको देगा।
मन में नित शान्ति रहेगी,
नहिं काल का चक्र चलेगा॥

जब लहर कर्मों की आए,
उसे झेलो तुम साहस से।
यों समझो, सूली सूल हुई,
यह कहता तुका है तुमसे॥

मान अपमान गोवे
गाथा 109

* इस पद्य का भावार्थ यह है कि तुम मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि सब द्वन्द्वों से पिण्ड छुड़ाओ।

हर साधना का यही है सार

मन है सहायक जब हो जाता,
प्रभु-प्राप्ति में श्रम कम होता।
हर्ष क्रोध नहीं छूते जिसको,
प्रभु की ओर वह अग्रसर होता॥

नहीं ज़रूरत बहुत खोज की,
हर साधना का यही है सार।
कहे तुका, तन जान ले मिथ्या,
तज दे तू इसका अहंकार॥

थोडें आहे थोडें आहे
गाथा 110

मिले यदि सन्त की संगति उनको

सन्त साक्षात् भगवान् होते हैं,
तीर्थ में मिलें जल पत्थर तुमको।
मिल जाए जो सन्त की संगति,
ख़ुद को कर दो अर्पित उसको॥

भक्ति-भावना जिनकी गहरी,
तीर्थ की यात्रा फलती उनको।
अधकचरे भी मुक्ति पा लें,
मिले यदि सन्त की संगति उनको॥

तुका, ताप* मिट जाएँ जिनके,
जानो नष्ट पाप सब उनके॥

तिर्थीं धोंडा पाणी
गाथा 114

* **ताप**=आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक, ये तीन तरह के कष्ट।

नासमझ हम मनुष्य भी ऐसे

दाने भर लेता मुट्ठी में,
  हाथ लोटे के गले में फँसता।
कैसे करे स्वहित अब बन्दर,
  इतनी समझ वह नहीं है रखता।
कहूँ मैं क्या इस बारे में जब
  बन्दर ख़ुद से अन्याय है करता॥

लगाई बहेलिये ने थी चरखी,
  तोता बैठा, पकड़ी कसकर।
चरखी घूमी, लटक गया उलटा
  भूल गया उड़ना, धर लिया आकर।
नासमझ हम मनुष्य भी ऐसे,
  तुका, मिलेगी मुक्ति क्योंकर॥

माकडें मुठीं धरिले फुटाणे
गाथा 132

जलने में नहीं लगेगा पल भर

प्रथा-प्रपंच से तुम्हें छुड़ाया,
  राम-नाम का करो अब सुमिरन।
पाप रहें ना निकट तुम्हारे,
  करो निरन्तर यदि तुम सुमिरन॥

पाप करोड़ों किये हों तुमने,
  पाँच विकारों के वश होकर।
नाम में शक्ति इतनी है कि
  जलने में नहीं लगेगा पल भर॥

पाप तो तुमने किये हैं इतने,
  चर्चा अब किस-किसकी करूँ मैं।
पर चिन्ता तुम करो न बिलकुल,
  ज़िम्मेदारी लेता हूँ मैं॥

तुका, नाम का वास जहाँ हो,
  दुष्ट काल नहीं पास फटकता।
क्योंकि पाप जलाकर सारे
  राम-नाम भस्मसात् है करता॥

चाल केलासी मोकळ्या
गाथा 134

निरा भौंकना ही वह होगी

मन तुम्हारा नहीं जो निर्मल,
  काशी-यात्रा से क्या होगा।
गंगा-स्नान कर लेने से भी
  तुमको लाभ भला क्या होगा॥

बहुत कड़ा जो दाल का दाना,
  ख़ूब उबालो, नहीं पकेगा।
कड़ा ही उबले पानी में से
  निकलेगा, वह स्वाद न देगा॥

भक्ति-भाव यदि नहीं है मन में,
  माला फेरे होगा क्या।
तिलक लगा लोगे जो माथे,
  उससे भी पाओगे क्या॥

प्रेम-भावना यदि ना होगी,
  चर्चा भक्ति की करोगे जो भी।
कहे देता है तुका यह तुमसे,
  निरा भौंकना ही वह होगी॥

काय काशी करिती गंगा
गाथा 137

फिर भी सब कुछ प्राप्त किया

देखा नहीं इन आँखों से, पर
  सब कुछ मैंने है देख लिया।
दी तिलांजली 'मैं-मेरी' को,
  अब सबसे मैं हो एक गया॥

हाथ-पैर ये नहीं हिलाए,
  फिर भी सब कुछ प्राप्त किया।
नहीं खाया मुख से मैंने, पर
  रसना* ने उसका स्वाद† लिया॥

मुख से बोले बिना मैं बोला,
  गुप्त था जो, हो प्रकट गया।‡
तुका के कानों ने तो सुना ना,
  पर मन ने उसे कर ग्रहण लिया॥

न देखोन कांहीं
गाथा 249

---

* **रसना**—मन की रस लेने की शक्ति से अभिप्राय है।

† **उसका स्वाद**=शब्दामृत का रस।

‡ **मुख...गया**—भाव यह है कि मैंने चुपचाप नाम का सुमिरन किया और शब्द अन्दर प्रकट हो गया।

पैड़ी-पैड़ी चढ़ जाएँ

सुर भी इस लोक में आना,
  पाना नर-तन चाहते हैं।
हम धन्य हैं हमें मिला यह
  और प्रभु के दास बने हैं॥

यह देह मिली हमें ताकि
  सच्चिदानन्द-पद हम पाएँ।
धुर-धाम की लेकर सीढ़ी*
  पैड़ी-पैड़ी† चढ़ जाएँ॥

इहलोकींचा हा देहे
गाथा 254

* **सीढ़ी**=शब्द-मार्ग।
† **पैड़ी-पैड़ी**=एक-एक आन्तरिक मण्डल।

तुका त्यों तड़पे तुझे न पाकर

दुलहन जब जाती ससुराल को,
  सोचती, मायके आऊँगी कब।
देखती पीछे मुड़-मुड़कर वह,
  वही हाल है मेरा भी अब।
प्रभु! सोचता रहता हूँ मैं,
  मिलाप तुमसे होगा फिर कब॥

माता से बिछुड़े जब बालक,
  ढूँढ़े उसको व्याकुल होकर।
मछली तड़पे जल से बाहर
  तुका त्यों तड़पे तुझे न पाकर॥

कन्या सासुन्यासि जाये
गाथा 266

प्रतिदिन कोई अभ्यास करे तो

वस्तु विषैली यदि कोई व्यक्ति
  प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी खाए।
पचने लग जाए धीरे-धीरे,
  देखना भी कोई और ना चाहे॥

प्रतिदिन कोई अभ्यास करे तो
  साँप को हाथ में धरे रखेगा।
जब कि और कोई देखेगा भी
  तो वह थर-थर काँप उठेगा॥

लगकर प्रयत्न करे जो कोई,
  असाध्य भी साध्य हो जाएगा।
तुका कहे, अभ्यास से साधक
  साधना में सफलता पाएगा॥

साधूनी बचनाग
गाथा 298

बातें केवल, कोई सार नहीं है

ज्ञान की बातें करवाते हो,
  अनुभव भी तो दो अन्तर में।
अनुभव-हीन जो रहूँगा, भगवन्!
  हँसी का पात्र बनूँगा जग में॥

मीठा नहीं, मिठाई किस काम की,
  शृंगार मृतक का भी है निरर्थक।
अगर निभाए न भूमिका ढंग से,
  खिल्ली उड़ाते नट* की दर्शक॥

गुड्डे-गुड़िया के विवाह में
  ना दुलहन ना दूल्हा होता।
ख़र्च हैं उसपर जितना करते,
  समझो, सब बेकार है होता॥

सुन्दरता क्या बिना गुणों के,
  तुका, दशा मेरी भी यही है।
प्रेम दिखे ना अपने मन में,
  बातें केवल, कोई सार नहीं है॥

बोलविसी तैसें आणीं अनुभवा
गाथा 304

* **नट**=अभिनेता।

तब तक, जब तक नहीं जागा

स्वप्न में मैंने देखा, किसी ने
  है बेगार पर मुझे लगाया।
सपना वह टूट गया जब तो
  एक भ्रम ही केवल पाया॥

श्रम से मुक्ति हेतु व्यर्थ मैं
  'कोई दया करो' चिल्लाया।
राजा, धनी, भिखारी देखे,
  जब जागा, यहाँ उन्हें न पाया॥

बहुत दुख मैंने सहा जो सच था
  तब तक, जब तक नहीं जागा।
अनुभव ने सत्य जताया मुझे,
  देख स्वप्न में दुख जब जागा॥

आख़िर सन्तों ने चिताया मुझे,
  मैं करने लग गया सुमिरन।
तुका कहे, जो सन्त ना मिलते,
  कभी बैठता न करने सुमिरन॥

स्वप्नींचियां गोष्टी
गाथा 336

छाया देखे सुख नहीं मिलता

अन्न की गन्ध से भूख मिटे जो
  तो क्यों खाना बने घर-घर में।
पानी देखे प्यास मिटे जो,
  भरकर धरें तब क्यों हर घर में॥

छाया देखे सुख नहीं मिलता
  बैठो ना यदि वृक्ष के नीचे।
हित होगा हरि-गुण गा-सुनकर
  होगा पक्का प्रेम जो हरि से॥

तुका कहे, प्रेम मुक्ति देगा,
  क्या देगा तुम्हें कोरा ज्ञान।
तुका कहे, नित करो हरि-भक्ति,
  कर लो तुम अपना कल्याण॥

अन्नाच्या परिमळें जरि जाय भूक
गाथा 342

बाहर मृदु, अन्दर भी वैसा

दुखी को, पीड़ित को अपनाए,
  जानो सन्त, प्रभु-रूप हो जाए।
सन्तों का दिल माखन जैसा,
  बाहर मृदु अन्दर भी वैसा॥

कोई न कहता अपना जिसको
  लगा लें वे हृदय से उसको।
प्यार करें सेवक से इतना,
  पुत्र से अपने होता जितना।
तुका करे कितना गुणगान?
  वे तो हैं साक्षात् भगवान्॥

जें कां रंजलें गांजलें
गाथा 347

यही पथ सन्तों ने अपनाया है

निराकार की राह पर चलता,
  मैं हो गया अन्धा जग के प्रति।
सहज में ही हो गया है ऐसा,
  निवृत्ति की ओर हो गई है वृत्ति॥

लोगों की ओर ध्यान न जाता,
  किसी भी वस्तु की महत्त्व नहीं अब।
मैं-मैरी का अन्त हो गया,
  प्रपंच जो दृश्य था, दिखता नहीं अब॥

नश्वर जग के भ्रम सब मिट गए,
  सुख से भरा विश्राम मिला मुझको।
त्रिकुटी*—शिखर पर अनायास ही,
  प्रभु की दया का दान मिला मुझको॥

पापों और पुण्यों, आशाओं से
  भरी थी झोली, ख़ाली कर दी।
अशान्ति जो थी तीन गुणों के कारण,
  उससे अब मैंने मुक्ति पा ली॥

---

* **त्रिकुटी**=दूसरा आन्तरिक मण्डल।

विश्वास है, भीख न माँगनी होगी
  इच्छाएँ करने को पूरी।
ब्रह्मानन्द की हो गई प्राप्ति
  जिससे इच्छाएँ हो गईं पूरी॥

ऊर्ध्वमुख रखा ध्यान जब मैंने,
  सोहं-शब्द* सुनाई दे गया।
देख मेरी मिलन की प्रबल लालसा,
  निराकार वह दाता प्रकट हो गया॥

उसके यर्थाथ स्वरूप के बोध का
  दान यों मिल गया उससे मुझको।
रखकर केवल नाम का अन्तर†
  निज रूप में मिला लिया उसने मुझको॥

शब्द ही सार है सबका, इसने
  जीवों पर बहुत उपकार किया है,
सो सन्तों ने इसी की राह से
  हमेशा सफ़र वह तय किया है॥

---

* **सोहं-शब्द**=चौथे आन्तरिक मण्डल सोहं का शब्द।

† **रखकर...अन्तर**=मेरा नाम-मात्र तुका रहने दिया।

भव-सागर को जीव बहुत-से
  तर गए हैं विश्वास कर इस पर।
यही है सार आध्यात्मिकता का,
  तुम भी दृढ़ विश्वास करो इस पर॥

संभव नहिं, बिना इसे पहचाने
  कोई भी उस मंज़िल को पाए।
सो जिज्ञासु ध्याए न और कुछ,
  एक इस शब्द को ही अपनाए॥

यही पथ सन्तों ने अपनाया है,
इसीलिये तुका यह कहता है॥

सहज मी आंधळा गा
गाछा 426

चलता है एक ही सिक्का

कस ली है कमर कलियुग का
डटकर सामना करने को।
तैयार है अब एक रास्ता
भव-सागर को तरने को॥

तुम नर हो या हो नारी,
वर्ग ऊँचा है या नीचा।
तुम सोचो ना कुछ मन में,
मत करो तनिक भी चिन्ता॥

चाहे व्यस्त काम में रहते,
या नहीं काम करने को।
की है कुछ आत्मिक उन्नति
या उत्सुक हो करने को।
चाहे तुम जपी-तपी हो
बजा ढोल बुलाऊँ सबको॥

उस दुनिया में मालिक का
चलता है एक ही सिक्का।
मालिक ने भेज दिया अब
इस दुनिया में वह सिक्का।
लाया हूँ, कहे तुका यह,
यहाँ वही नाम का सिक्का॥

कास घालोनी बळकट
गाथा 519

भक्ति की डौंड़ी पीटने आया

परम-धाम का वासी हूँ मैं,
लोक-कल्याण हित यहाँ हूँ आया।
करनी कैसी होनी चाहिये—
सन्तों ने यह है बतलाया।
पूरी श्रद्धा से अपनाओ—
तुम्हें यही समझाने आया॥

सन्त-मार्ग से दूर हुए जन,
अन्य मार्ग अपना लिये उनने।
सन्त-शिक्षा मैं फिर से खोलूँ
नया तो कुछ ना जोड़ूँ उसमें॥

खो गया अर्थ धर्म-ग्रन्थों का,
पाण्डित्य निगल गया उसको।
भक्ति की डौंड़ी पीटने आया,
दहला देगी यह कलियुग को॥

विषय-लोलुप यह मन मनुष्य का,
साधना सारी साथ ले डूबा।
जयजयकार अब प्रभु के नाम का
करो आनन्द से, कहे तुका॥

आम्ही वैकुंठवासी
गाथा 520

वही बताए, तुका है कैसा

मरकर भी मैं जीवित हूँ, सो
अकथ्य जो बातें, वे कहता हूँ।*
रहता हूँ मैं इसी दुनिया में,
फिर भी नहीं मैं दुनिया का हूँ॥

सब कुछ भोगूँ, फिर भी त्यागी,
हूँ लोगों के बीच एकाकी।
हर एक मोह को मिटा दिया है,
हर इच्छा है मैंने त्यागी॥

तुका है जैसा तुमको दिखता,
नहीं है वास्तव में वह वैसा।
पूछना हो तो प्रभु से पूछो,
वही बताए तुका है कैसा॥

बोलों अबोलणें मरोनिया जिणें
गाथा 537

* **अकथ्य...हूँ**=आन्तरिक अनुभव प्राप्त करके ही मैं अब आध्यात्मिक ज्ञान की वे बातें कह रहा हूँ जो वैसे नहीं कहनी चाहियें।

अन्य उपाय न कलि में चलता

प्रभु के चरण पकड़ लो तुम अब,
अन्य उपाय न कलि* में चलता।
पुण्य समाए सब सुमिरन में,
सभी पाप यह नष्ट है करता॥

नाम का सुमिरन जो करते हैं,
चिन्ता-मुक्त हर पल रहते हैं।
सबका यह उद्धार है करता,
नर-नारी दोनों तरते हैं॥

सुमिरन का नहीं समय निर्धारित,
कभी भी कर सकते हो सुमिरन।
गर्भवास का, पुनर्जन्म का,
दु:ख मिटा देता है सुमिरन॥

नाम जपो एक प्रभु का ही तुम,
कुछ भी नहीं है छोड़ना पड़ता।
नाम जो प्रेम से जपना चाहें,
तुका है उनके लिये यह कहता॥

आणीक काळें न चले उपाय
गाथा 542

* **कलि**=कलियुग।

तुका का जीना ही किस काम का

रहे ना जिह्वा यह प्रभु! मेरी,
  गाए जो महिमा और किसी की।
मस्तक यह फट जाए जो मन में
  प्रीति जागे और किसी की॥

नेत्र जो देखें और को चाव से,
  उसी घड़ी से घृणित हो जाएँ।
हरिकथामृत-पान जो करें ना
  कान ये मेरे काम ना आएँ।
तुका का जीना ही किस काम का,
  पल भर भी तुझे भूल जो जाए॥

तुजविण वाणीं आणिकांची थोरी
गाथा 565

कहने को जब नहीं कुछ

वह मिल गया है मुझको
  मैं चाहता था जो कुछ।
कहूँ तो क्या जो मेरे
  कहने को ना रहा कुछ॥

मेरे लिये तो सब कुछ
  हो गया है निष्प्रयोजन।
नाम के चूँकि अब मैं
  हूँ बँध गया मधु* बन्धन॥

मेरी भी अब दशा है
  गूँगे मनुष्य जैसी।
खाए तो कह न पाए
  शक्कर होती है कैसी॥

कहता तुका, है अच्छा
  चुप ही अब तो रहना।
कहने को जब नहीं कुछ,
  तो क्या है मुझको कहना॥

इच्छावें तें जवळी आलें
गाथा 574

* **मधु**=मधुर।

मन शान्त रहे तो

शान्ति से बढ़कर सुख नहीं कोई
और सब कुछ तो है दु:ख का घर।
इसलिये मन को शान्त रखो तुम,
पार कर जाओगे भव-सागर॥

कामी, क्रोधी के तन, मन को
तरह-तरह के कष्ट सताते।
तुका कहे, मन शान्त रहे तो
तीनों ताप* हैं दूर हो जाते॥

शांतीपरतें नाहीं सुख
गाथा 580

* **तीनों ताप**=आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक कष्ट।

ब्रह्मा का पद तुच्छ वे मानें

प्रभु का सुमिरन ही जिनका धन,
ब्रह्मा का पद तुच्छ वे मानें।
भोग उपलब्ध जो इन्द्र आदि को,
उनको भी वे रोग ही जानें॥

दुनिया भर का राज्य भी अपने
किसी काम का नहीं समझते।
राज्य पाताल का भी नहीं चाहिये,
उसको तो हैं विपद् समझते॥

योगाभ्यास से मिलें जो सिद्धियाँ,
उनमें भी उन्हें सार न दिखता।
मोक्ष के सुख को सुख मानें ना,
वह उनको है दु:ख ही लगता।
कहता तुका, बिना प्रभु के उनको
सब कुछ नीरस ही है दिखता॥

परमेष्ठिपदा तुच्छ करिती
गाथा 582

अब हूँ तेरी शरण में आया

कर नहीं पाता कुछ भी जो है
तेरे चरणों तक पहुँचाता।
प्रेम नहीं, करूँ भक्ति कैसे,
मन को वश में कर नहीं पाता॥

धर्म-क्रिया जो करना चाहूँ,
मन मेरा यह दृढ़ नहीं होता।
दान यदि देना भी चाहूँ,
पैसा पास नहीं है होता॥

ब्राह्मणों का और मेहमानों का
स्वागत करना मुझे नहिं आता।
दयाभाव नहीं मेरे मन में,
दया जीवों पर कर नहीं पाता॥

गुरु का सेवक कैसे बनूँ मैं,
इसका मुझको पता नहीं है।
सन्त की सेवा कैसे होती,
इतनी मुझमें समझ नहीं है।
अनुष्ठान, जप या तप कैसे,
यह भी मुझको विदित नहीं है॥

उपजा नहीं विराग, इस कारण
जंगल में मैं जा नहीं सकता।
मुश्किल साथ में यह भी है कि
इन्द्रिय-दमन मैं कर नहीं सकता॥

तीर्थ-यात्रा करने को मन
अपने आप तैयार नहीं है।
व्रत जो रखना भी चाहूँ तो
विधि का मुझको ज्ञान नहीं है॥

समझता हूँ, और कहता भी हूँ,
ईश्वर मेरे अन्दर ही है।
भावना अपने-पराये की पर
दूर अभी तक हुई नहीं है॥

इन सब कारणों से ही तो मैं
अब हूँ तेरी शरण मैं आया।
हूँ अब अंकित दास मैं तेरा,
चिन्ता मिटी अरु चैन है पाया।
नहीं ज़रूरत और संचित की,
तुका कहे, यह तो तय पाया॥

माझा तंव खुंटला उपाव
गाथा 648

संकल्प हो गया पूरा

भव-सागर को तरने का
संकल्प हो गया पूरा।
तोड़ा है जग से नाता,
नित जपता नाम हूँ तेरा॥

अब नहीं आएगी बाधा
कहीं से कोई कभी भी।
तुका का नहीं रहा अब
तेरे सिवाय कुछ भी॥

उतरलों पार सत्य झाला
गाथा 763

नर-तन को आदर से देखो

नर-तन को आदर से देखो,
इसी में नाम जो सब सुख देता।
नाम भजो तो द्वैत रहे ना,
तब ही है प्रभु दर्शन देता।
निराकार प्रभु भक्त की देह में
साकार है अपने को कर देता॥

यज्ञ करें और करवाएँ तो
व्रत धारें और तप करें तो।
रहें आध्यात्मिक लाभ से वंचित,
करें न यदि प्रभु को पाने को॥

तुका, भटकना छोड़ो तुम अब,
देह के अन्दर जानो सुख सब॥

देह हा सादर पाहावा
गाथा 808

कर स्वीकार यह सेवा मेरी

मन वाणी से अगम्य स्वरूप के
ज्ञान हेतु अपनाई भक्ति।
हे अनन्त! वस्तुतः तुम कैसे,
जान न सकते और किसी भाँति॥

योग, यज्ञ, तप—ये सब साधन,
शरीर से ही सम्बन्ध हैं रखते।
इनके या फिर ज्ञान के द्वारा
तुमको हम कभी पा नहीं सकते॥

भोला प्रेम है, जैसी भी है,
कर रहा हूँ मैं सेवा तेरी।
विनती है यह तुका की, हे प्रभु!
कर स्वीकार यह सेवा मेरी॥

मनवाचातीत तुझें हें स्वरूप
गाथा 810

यदि प्रेम हो निर्मल

हृदय जो साक्षी, लोगों का क्या?
ध्यान करो ख़ुद अपने हित का।
प्रभु व्याप्त है अन्दर बाहर,
सच्चा प्रेम यह भाव है चित्त का॥

निर्मल प्रेम न वाणी माँगे,
बोले बिना प्रकट हो जाता।
भक्त को काम अन्दर के रस से,
बाहर का रंग ना उसे लुभाता।
तुका कहे, यदि प्रेम हो निर्मल,
भक्त का भाट प्रभु बन जाता॥

चित्त ग्वाही तेथें लौकिकाचें
गाथा 951

केवल परोपकार हित

तुका यह अणु से भी छोटा था,
अब आकाश-सम बड़ा हो गया।*
अहंभाव अब रहा न इसमें,
भ्रममय देह से अलग हो गया॥

तीनों आवरण† उतार फेंके,
दीप अब अन्दर जगमगा रहा।
अब तो केवल परोपकार हित
यह जीवन है तुका जी रहा॥

अणुरणीयां थोकडा तुका
गाथा 993

* **अब...हो गया**—भाव यह है कि अब यह प्रभु से एक होकर असीम हो गया है।
† **तीनों आवरण**=स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर।

तड़प है मेरी बिलकुल वैसी

मछली तड़पे जल बिन जैसे,
आत्मा मेरी तुझ बिन वैसे।
धरती में गाड़ा धन अपना
मिले ना यदि, मन तड़पे जैसे।
तेरे ना मिलने से, हे प्रभु!
मेरा यह मन तड़पे ऐसे॥

माता से बिछुड़ा हो बालक
तड़प उसकी होती है जैसी।
वियोग में तेरे, जान ले, हे प्रभु!
तड़प है मेरी बिलकुल वैसी॥

तुझे जताऊँ क्या-क्या कहकर,
चरण-शरण ही एक उपाय अब।
भूल न गया हो तू कहीं मुझको,
सता रहा यह भय मन को अब।
जाने है तू सब कुछ, हे प्रभु!
विनती तुका की, कर दे कृपा अब॥

जीवनावांचूनी तळमळी मासा
गाथा 1031

सँभाल पिता को करनी होगी

पिता समृद्ध, पुत्र दीन-हीन हो,
जग-हँसाई प्रभु! किसकी होगी।
पुत्र कुपुत्र हो, भरा अवगुणों से,
सँभाल पिता को करनी होगी।
तुका पतित, पर मुद्रांकित है,
सँभाल तुम्हें ही करनी होगी॥

समर्थाचें बाळ कीविलवाणें दिसे
गाथा 1055

जाल में फँसा, छुड़ाओ भगवन्

बीन के स्वर पर मुग्ध साँप को
पकड़ पिटक में डाला जाता।
सँपेरे अपने पेट की ख़ातिर
फिर दर-दर है उसे घुमाता॥

मेरी दशा भी ऐसी ही है,
जाल में फँसा, छुड़ाओ भगवन्।
मेरी तो कुछ नहीं चलेगी
यदि दया तुम्हारी हो ना भगवन्॥

मछली चारा खाना चाहती,
काँटा गले में है फँस जाता।
माँ-बाप क्या कर पाते जब
बाहर निकाल उसे मारा जाता॥

बच्चों से मिलने की आशा
लिये लौटते पक्षी घर जब।
बच्चे जाल में फँसे देखकर
बचाने जाते प्यार से वे तब।
ख़ुद भी साथ ही मारे जाते,
उनको नहीं बचा पाते जब॥

मिठास के लोभ में मक्खी भी है
  चिपचिपी चाशनी में फँस जाती।
फड़फड़ाती बचने को ज्यों-ज्यों
  त्यों-त्यों अधिक है धँसती जाती।
तुका, दौड़कर आओ, बचाओ,
  जान हैं इच्छाएँ लिये जाती॥

सर्प भुलोन गुंतला नादा
गाथा 1092

धन्य-धन्य तन इससे होता

ग्रास-ग्रास संग नाम जो जपता,
  खाकर भी करता उपवास।
धन्य-धन्य तन इससे होता,
  तीर्थों, व्रतों का यही निकास॥*

काम-काज करते हुए अपना
  साथ-साथ जो नाम है जपता।
सुख समाधि में जो है मिलता,
  उसका सदा वह अनुभव करता॥

चलते-चलते नाम जो जपता,
  यज्ञ का फल पग-पग पर पाता।
भोग, त्याग, दोनों में सुमिरन
  कर्मों के बन्धन से बचाता॥

इस प्रकार है नाम का सुमिरन
  प्रतिदिन करता जो परमार्थी।
तुका का कहना है, यह जानो,
  जीते-जी पा लेता मुक्ति॥

राम म्हणे ग्रासोग्रासीं
गाथा 1096

* **निकास**=स्रोत।

छोड़ दो सांसारिक तृष्णाएँ

तड़पो नहीं, रहो तुम अविचल,
दयानिधान है मेरा स्वामी।
आख़िर तुमको मुक्ति का सुख
देगा ही, जो है अविनाशी॥

छूट जाओगे चौरासी से,
और तुम्हारी संगति पाकर।
जीव तरेंगे कई, करोगे
एक बड़ा उपकार यों उन पर॥

करते रहो नित नाम का सुमिरन
यहाँ वहाँ आराम रहेगा।
छोड़ दो सांसारिक तृष्णाएँ,
तुका, यों परम आनन्द मिलेगा॥

न करीं तळमळ राहें रे निश्चळ
गाथा 1143

सन्त के संग से

हीरे, दीप, रवि का प्रकाश तो
दृश्य वस्तुएँ ही है दिखाता।
सन्त के दर्शन हो जाएँ तो
अदृश्य है जो, वह भी दिख जाता॥

सन्तों का वास्तविक स्वरूप तो
ब्रह्मा आदि को भी विदित ना।
तुच्छ हूँ मैं, क्या जानूँ उसको,
बखानूँ क्या सन्तों की महिमा॥

ताप बदन में हो यदि किसी के,
शान्त हो जाए वह चन्दन से।
जीव त्रिगुणात्मक माया से पर
छूटे केवल सन्त के संग से॥

प्यार से माता-पिता बच्चे के
शरीर का पालन-पोषण करते।
जन्म-मरण ही बच्चे का पर
दूर हो जाता सन्त के संग से॥

खाए स्वादु पकवान जो कोई,
भूख का अन्त इससे हो जाता।
कहा मानने से सन्तों का
पुनर्जन्म का दुख ना सताता॥

आए बुलावा, तब जाएँगे,
ऐसा क़तई न सोचो मन में।
कहे तुका, बड़े भक्ति-भाव से
जाओ तुम सन्तों की शरण में॥

रवि दीप हीरा दाविती देखणें
गाथा 1260

है भोग के लिये अब जगह कहाँ?

याद तुम्हारी बसी है मन में,
है भोग के लिये अब जगह कहाँ।
दे दिया फल जब भक्ति-बीज ने
तब मिलन में बाधा रही कहाँ॥

दूर हो गई जब बेचैनी,
तब चिन्ता कहाँ, थकान कहाँ।
दया हुई तेरे चरणों की,
तुका, अब भ्रम कोई रहा कहाँ॥

कोठें भोग उरला आतां
गाथा 1276

तुच्छ से तुच्छ सदा बने रहना

छोटा हूँ—यह भावना दो प्रभु!
चींटी छोटी, शकर चुग पाती।
ऐरावत* गज बड़ा रत्न, उसे
अंकुश की नोक चुभाई जाती॥

बड़ा जो अपने आपको समझे
घोर कष्ट पड़ता उसे सहना।
कहे तुका, समझो, तुम्हें चाहिये
तुच्छ से तुच्छ सदा बने रहना॥

लहानपण दे गा देवा
गाथा 1282

---

* **ऐरावत**=पुराणों में उल्लेख है कि जब देवताओं और दानवों ने मिलकर क्षीर-सागर का मन्थन किया था, तब समुद्र में से निकलनेवाले चौदह रत्नों में से एक ऐरावत हाथी था जिसे देवराज इन्द्र ने अपना वाहन बना लिया था।

मौत भूल गए, कारण है क्या

चकित हूँ, ध्यान लोगों का अपने
हित की ओर क्यों नहीं है जाता।
विश्वास उन्हें किस बात का इतना,
अन्त के दिन काम कौन है आता॥

क्या विचार निश्चिन्त वे रहते?
जवाब यमदूतों को देंगे क्या।
लगाव उन्हें किस चीज़ से इतना,
मौत भूल गए, कारण है क्या॥

क्या नहीं है हाथ में उनके,
पता नहीं, क्या हुआ है उनको।
मुक्त होने को भव-बन्धन से
याद वे क्यों नहीं करते प्रभु को॥

दाम चुकाना पड़ेगा कितना?
धन कितना लग जाएगा उनका।
बात भला क्या ऐसी है कि
नहीं समझता मन यह उनका॥

तुका, चार खानियों* में क्यों ये
लोग दुनिया के भटक रहे हैं।
क्या कारण है जो सब के सब
जगदीश्वर को भूल गए हैं॥

वाटे या जनाचें
गाथा 1496

* **खानि**=भेद। सन्तों ने जीवों के चार भेद बताए हैं—अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज।

लोक-कल्याण हित जग में आते

वाणी में सामर्थ्य नहीं जब,
कैसे सन्त की स्तुति* करूँ मैं।
मेरे वश में तो, बस, यही है
मस्तक चरणों पर रख दूँ मैं॥

लोहे को छूने में झिझके
पारस यदि तो गया बड़प्पन।
लोक-कल्याण हित जग में आते
यही तो है सन्तों का बड़प्पन॥

परोपकार हित अपने तन को
कष्ट बहुत सन्त जन देते हैं।
सब जीवों का भला वे चाहते,
निधि दया की सन्त होते हैं॥

अपने तन का मोह नहीं रखते,
सुखी होते दूसरों के सुख से।
तुका कहे, वे परमसुख-दाता,
अमृत बरसे उनके मुख से॥

काय वाणूं आतां न पुरे हे वाणी
गाथा 1510

* **स्तुति**=प्रशंसा।

नयनों में वह रूप बसा था

तेरे विरह की पीड़ा से यह
मन हर पल व्याकुल रहता था।
एक बार हुए दर्शन अन्दर,
नयनों में वह रूप बसा था॥

जग के कामों का महत्त्व अब
नहीं था मेरे लिये रहा।
अखण्ड ध्यान था मेरा अब तो
उसी रूप में लगा हुआ।
जब हृदय तुका का बिंध गया यों,
प्रभु अन्दर हो प्रकट गया॥

सर्वकाळ माझे चित्तीं
गाथा 1515

नाद की जब मस्ती

नाद की मस्ती से जो परिचित,
जग का रंग ना उन्हें लुभाता।
अन्तर्मुख हो ध्यान जब उनका,
सहज में बाहर नहीं है आता॥

नाद की जब मस्ती, तब तन की
सुध नहीं, अंग न वश में होते।
औरों की बातें साधारण,
उनके वचन वेदवाक्य हैं होते॥

सांसारिक दुख औ इलाज उनका,
ये उनको हैं याद ना रहते।
बात जब आन्तरिक सुख की करते,
लोग चकित, विक्षिप्त उन्हें कहते॥

रंग-रंग के पदार्थ जग के
उनके लिये प्रभुमय हैं होते।
तुका कहे, अपने अन्दर वे
ब्रह्मानन्द में मगन हैं रहते॥

अनुहातीं गुंतला नेणे बाह्य रंग
गाथा 1637

क्या कर लिया जो की तीर्थ-यात्रा

क्या कर लिया जो की तीर्थ-यात्रा?
  केवल धोई चमड़ी ही अपनी।
मन हुआ निर्मल इससे कैसे
  शोभा जो इसमें मान ली अपनी॥

कड़वे वृन्दावन* के फल को
  घोल में शक्कर के जो घुमाएँ।
कड़वाहट जो उसके अन्दर,
  वह तो इससे कभी न जाए॥

शान्ति, दया, क्षमा - ये तीनों
  गुण जो तुममें हैं नहीं आए।
तुका, क्यों फूले-फूले फिरते,
  निखार तो मन में ला नहीं पाए॥

जाऊनियां तीर्था काय तुवां केलें
गाथा 1732

* **वृन्दावन**—मराठी में एक पौधे का नाम है जो दो प्रकार का होता है: एक में मीठे फल लगते हैं और दूसरे में कड़वे।

दाता का भण्डार अमित है

दाता का भण्डार अमित है,
  दो ही हाथ हैं पर भिक्षुक के।
क्या करूँ अब मैं? भरूँ मैं किसमें?
  संपदा मुझे जो मिली है तुमसे॥

हृदय है मेरा एक ही, उससे
  छलक रही है प्रीत अब तेरी।
तेरी दात का वर्णन करती
  थक गई है यह जिह्वा मेरी॥

जैसा हूँ, रहने दो वैसा,
  तुका, प्रार्थना और न मेरी।
स्थान दिये रखना चरणों में,
  यही एक अब याचना मेरी॥

मागतियाचे दोनि च कर
गाथा 1738

तर न सकें जप बिन भव-सागर

नाद अनाहत गूँज रहा है
सब जीवों के शरीर के अन्दर।
होता प्रकट वह नाम के जप से,
तर न सकें जप बिन भव-सागर॥

प्रभु सर्वत्र व्याप्त, पर जब तक
सतगुरु-रूप में दर्शन ना हों।
तब तक तो कभी किसी तरह भी
भव-सागर के पार ना हम हों॥

सच है, सबमें प्रभु, सब जानें,
पर भक्ति बिना वह प्राप्त न होता।
योगमुद्राएँ जान जो उनका
करें अभ्यास, क्या लाभ है होता।
उन्मुनी* के दीपक का उनसे
प्रकाश तो अन्दर नहीं है होता॥

शरीर के पालन-पोषण में ही,
तुका कहे, तुम लगे रहो ना।
इसी काम में लगे रहने पर
प्रभु से मिलन कभी भी हो ना॥

अनुहात ध्वनि वाहे सकळां पिंडीं
गाथा 1789

* **उन्मुनी**=प्रभु के गहरे ध्यान की अवस्था।

चोर घर में ही छिपा है होता

अपने ही घर में चोरी की,
प्रभु ने भिखारी ख़ुद को बनाया।
दौड़-दौड़कर ढूँढ़ते उसको,
यो नहीं ठौर किसी ने पाया॥

चोर घर में ही छिपा है होता,
मौक़ा पाता, लूट सब लेता।*
बचता नहीं है घर में कुछ भी,
तुका नहीं है समझ यह पाता।
कौन लुटता है? लुटता क्या है?
कौन है वह जो लूट है लेता॥

देवाचे घरीं देवें केली चोरी
गाथा 1840

* **मौक़ा...लेता**=परमार्थी को प्रभु से प्रेम हो जाए तो प्रभु उसकी 'मैं', 'मेरी' की भावना को दूर कर देता है और वह सब कुछ होते हुए भी फ़क़ीर हो जाता है।

सँभलो रे! कुछ सँभलो रे अब!

सदा सर्वत्र न सोए रहो तुम,
  समय असमय का ध्यान करो।
सँभलो रे! कुछ सँभलो रे अब!
  सावधान रहो! सावधान रहो॥

चोरों को* तो मौक़ा चाहिये
  घुस आने का घर में तुम्हारे।
चोर ये धोखेबाज़ बड़े हैं,
  चक्कर काटें गिर्द तुम्हारे॥

एक बार जो चीज़ गई† वह
  दोबारा नहीं हाथ में आती।
चीज़ को खो देने पर केवल
  तड़प ही है बाक़ी रह जाती॥

तुका है अपनी सम्पत्ति की
  सावधान रह रक्षा करता।
खोल लो कान अन्दर के, कुछ भी
  इसके लिये नहीं देना पड़ता॥

अवघे चि निजों नका अवघिये ठायीं
गाथा 1841

---

* **चोरों को**=काम, क्रोध, आदि पाँच विकारों को।

† **एक...गई**—मनुष्य शरीर की ओर संकेत है।

पृथ्वी पर कोई तुल्य न उसके

प्रभु भला है, बहुत भला है,
  वह उदार है, अत्यन्त उदार।
जैसी किसी की भक्ति होती,
  मिल जाता उसके अनुसार।
थोड़ा दान कभी नहीं देता,
  देता जो, वह दान अपार॥

उसमें शक्ति है, शक्ति अनन्त है,
  पृथ्वी पर कोई तुल्य न उसके।
मिलूँ उससे, यह प्रबल इच्छा है,
  सब जीवों को प्यार है उससे।
तुका, भला प्रभु, बहुत भला है,
  लिपटा हूँ चरणों से उसके॥

देव भला देव भला
गाथा 1868

मेरा भी है प्रभु, मेरा भी

मेरा भी है प्रभु, मेरा भी,
सब जीवों का जीवन है वह।
नहीं संशय उसके अस्तित्व में,
अन्दर, बाहर, निकट ही है वह॥

सचमुच मधुर है, मनभावन है,
भक्त की इच्छाएँ पूरी करता।
रक्षा मेरी करता है वह,
कलि को काँख में दाबे रखता।
प्रभु दयालु है, बहुत दयालु है,
तुका की वह सँभाल है करता॥

देव आमचा आमचा
गाथा 1870

चींटी से लेकर राजा तक

चींटी से लेकर राजा तक
सब जीवों को सम हूँ समझता।
मोह और आशा कलि के फन्दे,
इनमें मैं अब कभी न फँसता॥

सोना और मिट्टी, ये दोनों,
तुका, एक-से लगते मुझको।
परम-धाम का सुख अब क्योंकि
मिल गया है घट ही में मुझको॥

मुंगी आणि राव
गाथा 1895

मेरे साथ धूर्तता तेरी

तूने मुझे बना लिया अपना—
प्रभु! मानूँ यह सत्य मैं कैसे।
अनुभव क्यों नहीं होता कुछ भी,
वही हूँ अब भी जो था पहले॥

यश जो मेरा फैलाया वह
मुझ पर भार उपकार का तेरे।
सिर का यह आभूषण अब तो
भारी बोझ है सिर पर मेरे॥

कहता तुका, नहीं बदलेगी,
आन्तरिक अवस्था जब तक मेरी।
स्थिति यह तब तक मुझे लगेगी
मेरे साथ धूर्तता तेरी॥

माझा तुम्ही देवा केला अंगीकार
गाथा 1906

समान हो गए ये दोनों तट

अपार आनन्द भरा अन्तर में,
  प्रेम-प्रवाह चल रहा रुके बिन।
वेग से बहती शब्द की धारा,
  करूँ निरन्तर नाम का सुमिरन।
जिसका कभी भी अन्त न होता,
  मिला है मुझको ऐसा जीवन॥

इहलोक, परलोक, इनको तुम
  जानो भव-सागर के दो तट।
कहे तुका, अब मेरे लिये हैं
  समान हो गए ये दोनों तट॥*

आनंदाच्या कोटी सांटवल्या आम्हां पोटीं
गाथा 1978

* **तुका...तट**=संसार में रहते हुए ही परम-धाम मिल गया है, जीते-जी परम आनन्द का अनुभव हो रहा है।

वस्तुतः यह प्रताप तुम्हारा

हृदय में मेरे बसे हुए हैं
  चरण तुम्हारे, हे भगवन्।
उन्हीं ने मुझ पर प्रकट किया है
  रहस्य अन्दर का, हे भगवन्॥

मुझ जैसे अन्धे को सहारा
  केवल उन चरणों का ही है।
कैसे मुझे चलाना है—यह
  समझ तो केवल तुमको ही है॥

मन अब स्थिर है, इन्द्रियाँ वश में,
  स्वयं तो मैं नहीं कर यह पाया।
दया तुम्हारी है मुझ पर यह
  ऐसा जो मैं कर हूँ पाया॥

पाप पुण्य में भेद रहा ना,
  अज्ञान-तिमिर हो दूर गया।
त्रिगुणात्मक यह शरीर जो मेरा,
  मैं बन्ध से इसके छूट गया॥

तुका कहे, हो गया जो यह सब,
  वस्तुतः यह प्रताप तुम्हारा।
मैं तो जानता हूँ इतना, बस,
  शरणागत दाता! मैं तुम्हारा॥

तुझे पाय माझे राहियेले चित्तीं
गाथा 1999

जहाँ भी जाऊँ साथ तू मेरे

जहाँ भी जाऊँ साथ तू मेरे,
  चाले हाथ पकड़कर मेरा।
चलता पथ पर तेरे सहारे,
  बोझ उठाए है सब मेरा॥

अण्ड-बण्ड जो कभी मैं बोलूँ,
  अर्थ-पूर्ण कर देता उसको।
झिझक दूर करके सब मेरी
  निडर बनाया तूने मुझको॥

सभी लोग अब मेरे रक्षक,
  सगे-सम्बन्धी प्यारे मित्र।
लाड़-प्यार में खेलूँ तेरे,
  तुका, सुखी मैं अन्दर बाहर॥

जेथें जातों तेथें तूं माझा सांगाती
गाथा 2000

प्रवाह कर्मों का रोक दिया अपने

नाम का धन जो पाया मैंने,
  व्यय भी करूँ तो इति नहीं इसकी।
अहंकार की बलि देने पर
  हुई है मुझको प्राप्ति इसकी॥

मन एकाग्र कर नाम-भक्ति की,
  संचित कर्म मिटा दिये अपने।
अनासक्ति का बाँध लगाकर
  प्रवाह कर्मों का रोक दिया अपने॥*

सुख और दु:ख, सर्दी और गरमी,
  इनका अब प्रभाव न मुझपर।
पूर्णतया अब शान्त हूँ रहता,
  जैसे अन्दर, वैसे बाहर॥

फूटता अंकुर बीज में से, फिर
  पत्ते, शाखाएँ, फल हैं उपजते।
कर्म-चक्र चलता है ऐसे,
  नष्ट यह सब हो गया है जड़† से॥

तुका, नाम के मीठे रस के
  आनन्द में मगन हूँ रहता।
नाम से वंचित जीव जो, उनका
  कर्म-बीज है फलता रहता॥

जोडिलें तें आतां न सरे सारितां
गाथा 2008

---

* **प्रवाह...अपने**=क्रियमाण कर्म अब मेरे पुन: जन्म लेने का कारण नहीं बन सकते।
† **जड़**—अहंकार से अभिप्राय है।

नीच, दुष्ट मैं सबसे बढ़कर

गुण-दोषों की कमी क्या मुझमें,
औरों के मैं आँकूँ क्यों।
पाप-पुण्य ख़ुद किये क्या कम हैं,
किसी और के जाँचूँ क्यों॥

नीच, दुष्ट मैं सबसे बढ़कर,
ऐसा बोलूँ और मैं किसको।
कौन कुचाली खोटा ज़्यादा,
अपनी आँखों देखूँ जिसको॥

तुका कहे, तुझे अर्पित करता,
पापों का भण्डार यह दास।
तुझे भेंट करने को हे प्रभु!
और नहीं कुछ इसके पास॥

कासया गुणदोष पाहों आणिकांचे
गाथा 2036

सन्तों के चरणों में रहकर

अग्नि में है जो कुछ भी गिरता
अग्नि ही वह हो जाता है।
अपना उसका क्या बचता है,
ना नाम, ना गुण रह जाता है॥

लोहा यदि छू ले पारस को,
स्वर्ण बने, भूषण हो जाए।
नदी-नाले जो गिरें गंगा में
वे भी गंगा ही बन जाएँ॥

वास में चन्दन की जो नहाया,
द्रुम वह हो गया चन्दन जैसा।
सन्तों के चरणों में रहकर
तुका भी हो गया सन्तों जैसा॥

अग्निमाजी गेलें अग्नि होऊन
गाथा 2051

असंख्य भक्तों को तारा प्रभु ने

मग्न हरि-नाम के आनन्द में मैं
नाचूँ, गाऊँ, बजाऊँ ताली।
दयावान्, सहृदय प्रभु प्यार से
शरणागत की करे रखवाली॥

असंख्य भक्तों को तारा प्रभु ने,
अवश्य ही वह तारेगा मुझको।
विश्वास मुझे अब, सन्तों ने ही
बतलाया यह भेद है मुझको॥

आम्ही नाचों तेणें सुखें
गाथा 2105

नहीं उपेक्षा होगी मेरी

आप सज्जन हैं, दयावान् हैं,
कृपादान यह दें मुझे, सन्तो।
प्रभु को मेरी याद दिलाएँ,
दयनीय दशा बताएँ, सन्तो।
मेरी ओर से करें याचना,
कृपा करे वह मुझ पर, सन्तो॥

मैं अनाथ हूँ, अपराधी हूँ,
पतितों में सबसे बड़ा पतित।
फिर भी करें प्रभु से यह अनुनय,
चरणों से मुझे ना करे पृथक्॥

कहता तुका, अगर कह देंगे
आप सँभाल करने को मेरी।
कहा आपका नहीं टलेगा,
नहीं उपेक्षा होगी मेरी॥

कृपाळू सज्जन तुम्ही संतजन
गाथा 2256

सार है राम के नाम की भक्ति

समुद्र-पर्यन्त सारी पृथ्वी का
  दान भी नहीं है तुल्य नाम के।
करो न आलस कभी, रात-दिन
  लगे रहो सुमिरन में नाम के॥

सभी शास्त्र और वेद पढ़ लेना,
  नहीं बराबर राम-नाम के।
काशी, प्रयाग की, सब तीर्थों की
  यात्रा भी न समान नाम के॥

काशी जाकर करवत* लेना,
  या अन्य यातना तन को देना।
दु:साहस ऐसा कोई भी
  नाम की तुलना में कुछ है ना॥

जान लो तुम यह, सबसे ऊँचा
  धर्म-कार्य है नाम की भक्ति।
कहे तुका, आध्यत्मिकता का
  सार है राम के नाम की भक्ति॥

समुद्रवळयांकित पृथ्वीचें दान
गाथा 2298

* **करवत**=पुराने समय में काशी और प्रयाग में एक आरा था जिसके सम्बन्ध में लोगों में यह विश्वास था कि इससे शरीर को चिरवा लेने से मुक्ति मिल जाती है।

हुई अवस्था यह

मृत्यु मर गई मेरी जिससे
  अमरत्व मुझे हो प्राप्त गया।
नहीं ठिकाना रहा मृत्यु का,
  स्रोत भी अब हो नष्ट गया*।
हुई अवस्था यह मेरा जब
  देह-भाव हो लुप्त गया॥

बाढ़† आई थी, उतर गई वह,
  धैर्य आ गया है जीवन में।
मूल ध्येय था जो जीवन का,
  हो गया पूरा सही माने में॥

मरण माझें मरोन गेलें
गाथा 2348

* **स्रोत...गया**=नाम के अभ्यास से कर्मों का हिसाब-किताब ख़त्म हो गया है।
† **बाढ़**=मनोवेगों की बाढ़।

कथा त्रिवेणी - संगम है

कथा* त्रिवेणी—संगम है जहाँ
मेल सन्त, हरि, नाम का होता।
पवित्र चरण-रज सन्त की उसको
मिलती है जो उपस्थित होता॥

जो नर-नारी श्रद्धापूर्वक
हरि- कथा सुनने जाते हैं।
उनके मन की मैल है धुलती,
ढेर पापों के जल जाते हैं॥

तीर्थ भी यदि हरि -कथा में जाएँ,
और भी अधिक पवित्र हो जाएँ।
भक्त के चरणों में बीता पल
शुभ हो जाए, पवित्र हो जाए॥

महिमा इस संगम की अनुपम
कोई भी उपमा नहीं है संभव।
संगम जो सुख देता, वर्णन
ब्रह्मा द्वारा भी नहीं संभव॥

कथा त्रिवेणीसंगम देव भक्त आणि नाम
गाथा 2357

* **कथा**=प्रवचन, सत्संग।

नाम है घर में

नाम बटोरो, सार पदार्थ है,
बिना मोल के मिल जाता है।
हो जाए अमर जो इसे बटोरे,
पुनः गर्भ में नहीं जाता है।
दोषों का यदि पर्वत भी हो,
वह भी सारा जल जाता है॥

भक्ति -भाव से, बड़े चाव से,
राम-नाम का गान करो तुम।
नाम है घर में, भटक-भटककर
जगह-जगह नहीं व्यर्थ थको तुम॥

फुकाचें तें लुटा सार
गाथा 2393

साधन सबसे सरल यही है

नाम का सुमिरन प्रभु-प्राप्ति का
  नि:सन्देह है सरलतम साधन।
जीवों के सब जन्मों के यह
  पापों का करता है दाहन॥*

सुमिरन के हित वन जाने का
  कष्ट उठाना नहीं है पड़ता।
प्रभु ख़ुशी से स्वयं हमारे
  घर आने की कृपा है करता॥

टिककर बैठो एक स्थान पर,
  मन अपना एकाग्र करो तुम।
दिल से पुकारो अविनाशी को,
  नित गुरु-मन्त्र का जाप करो तुम॥

प्रभु की सौगन्ध खा कहता हूँ,
  साधन सबसे सरल यही है।
नाम सुमिर कर तृप्त जो होता,
  तुका कहे, मतिमान् वही है॥

नामसंकीर्तन साधन पैं सोपें
गाथा 2458

* **दाहन**=जलाना।

मुक्ति हेतु आयास क्यों इतना

तप का पर्वत खड़ा करो क्यों?
  काहे व्रत, यज्ञ आदि साधन।
ये सब तो बहुत कष्ट हैं देते,
  देश-देश में क्यों तीर्थाटन।*
आगे चलकर लाभ की आशा,
  अन्य जन्म का बनें यों कारण॥

पूजा कई देवों की क्योंकर?
  पूरी तुष्टि मिले न उससे।
मुक्ति हेतु आयास क्यों इतना?
  मोल बिना वह हरि-चरणन में॥

ख़ूब करो हरि-नाम का कीर्तन,
  कहना यही तुका का तुमसे।
लाभ यथार्थ उससे, घर बैठे
  इच्छा पूर्ण हो जाएगी उससे॥

कासया करावे तपाचे डोंगर
गाथा 2469

* **तीर्थाटन**=तीर्थों में घूमना।

दो एक हुईं, अब अलग कहाँ

नमक घुल गया जब पानी में,
तब अलग वह उससे रहा कहाँ।
अब मैं भी एक हुआ तुझसे,
तुझमें विलीन, अब अलग कहाँ॥

जब आग कपूर का मेल हुआ,
कालिख कपूर की बची कहाँ।
अब मेरी ज्योति मिली तेरी में,
दो एक हुईं, अब अलग कहाँ॥

लवण मेळवितां जळें
गाथा 2484

सम्मान एक-सा नहीं करो तुम

दही से दोनों, छाछ और मक्खन,
पर एक ही मोल पर मत माँगो तुम।
गगन में दोनों, चाँद और तारे,
पर समान ना दोनों को जानो तुम॥

धरती में दोनों, हीरा चकमक,
क़तई बराबर नहीं समझो तुम।
तुका, सन्त और अन्य लोगों का
सम्मान एक-सा नहीं करो तुम॥

दह्यांचिया अंगी निघे ताक लोणी
गाथा 2492

तेरे प्रेम ने मन को धो डाला

पाप-मलिन हो गया था मैं प्रभु!
तेरे नाम ने मुझे निखार दिया।
तेरे प्रेम ने मन को धो डाला,
अनुताप* ने मुझे कर पवित्र दिया॥

प्रारब्ध से मुक्त हुआ, अर्पित
तेरे चरणों में कर तन को दिया।
तुका, नर-देह जो मिली तुझसे,
ऋण उसका मैंने उतार दिया॥

जाली होती काया
गाथा 2502

रे मन! ऐसी याद न देना

रे मन! ऐसी याद न देना
जो हरि-चरणों से दूर ले जाए।
जिह्वा हरि का नाम जपे, बस,
मीठी ध्वनि ही कान सुन पाएँ॥

ईर्ष्या को कोई स्थान मिले ना,
लाभ न कोई, दुःख ही पाएँ।
मन रहे शान्त, तुका यह कहता,
क्षमा अरु शान्ति से बल आए॥

चित्ता ऐसी नको देऊं आठवण
गाथा 2527

---

* **अनुताप**=पश्चात्ताप।

तेरे चरणों का पावन जल

शीतलता से भी शीतल है
  तेरे चरणों का पावन जल।*
इस जल का मैं पान हूँ करता,
  सिर पर धरता यह पावन जल॥

परमपिता! मल धुल गया मन का,
  समग्र पाप हो नष्ट गया है।
तुका तेरे चरणों में बैठा
  पावन लहरों में डूब गया है॥

शीतळ तें शीतळाहुनी
गाथा 2542

दोनों दो अब रहे नहीं हैं

सागर नभ से एक हो गया,
  सृष्टि प्रभु में समा गई है।
लहर समुद्र की मिली समुद्र में,
  दोनों दो अब रहे नहीं हैं॥†

जल जब जल में समा गया तो
  ज्वार और भाटा रहे कहाँ।
कल्प समाप्त तो‡ उदय-अस्त नहीं,
  तुका का अब जन्म-मरण कहाँ॥

नभोमय जालें जळ
गाथा 2587

---

* **तेरे...जल**=अनाहत नाद, धुनात्मक नाम।

† **दोनों...हैं**=द्वैत समाप्त हो गया है।

‡ **कल्प...तो**=प्रलय हो जाने पर।

जल्दी आ, अब जल्दी आ जा

याद में तेरे चरणों की प्रभु!
  पल-पल व्याकुल रहे जी मेरा।
जल्दी आ, अब जल्दी आ जा,
  गले लगा ले, हित कर मेरा॥

मन उतावला, पन्थ निहारे,
  चूक क्या हो गई, याद दिला दे।
मेरे प्राणाधार हे भगवन्!
  वेग से उड़कर आ, दर्शन दे॥

क्षणक्षणां जीवा वाटतसे खंती
गाथा 2593

तुझ बिन सूनी सभी दिशाएँ

तू माता, शीतल छाया तू,
  पन्थ आतुर हो निहारूँ तेरा।
पिता भी तू ही, पुत्र भी तू ही,
  तू ही सगा-सम्बन्धी मेरा।
तुझ बिन सूनी सभी दिशाएँ,
  तुका, तू प्राणाधार है मेरा॥

तूं माझी माउली
गाथा 2607

अपनी मृत्यु का जब हुआ अनुभव

मिला आनन्द मुझे तब अनुपम,
अपनी मृत्यु का जब हुआ अनुभव।
तीनों लोक आनन्दपूर्ण अब,
प्रभु से एकता का हुआ अनुभव॥

अहंकार था जब मुझमें, तब
इहलोक तक थी मेरी सीमा।
अहंकार अब त्याग दिया है,
नहीं है मेरे सुख की सीमा॥

जन्म-मरण का नहीं अशौच* अब,
मैं-मेरी का खुल गया बन्धन।
प्रभु ने जगह दे दी अपने घर,
अब चरणों के प्रेम का बन्धन॥

अनुभव हुआ जो अपने अन्दर,
तुका वही करता है ज़ाहिर॥

आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळां
गाथा 2669

* **अशौच**=अपवित्रता।

निधि परमार्थ की पाए सोई

ऐसा कोई नहीं जग में जो
धन, पत्नी, सन्तान न चाहे।
समय बीतने पर सब दु:ख का
कारण बन जाते हैं चाहे॥

नीम रोग, दुख, पीड़ा हरता,
सेवन ख़ुशी से करे न कोई।
चोर की पीछा किये ख़ुशी क्या,
विघ्न न डालो, करे जो कोई॥

जो कुछ भी करता जो कोई,
कारण उसका जाने सोई।
काम उसे करने दो अपना,
करने से ना रोको कोई।
तुका कहे, जो अहं की बलि दे,
निधि परमार्थ की पाए सोई॥

ऐसा कोणी नाहीं हें जया नावडे
गाथा 2683

मौत जल्द ही आ जाएगी

बुढ़ापा मेरे कान में कहता,
भेंट मौत से जल्दी होगी।
सावधान हो, मन! यह समझ ले,
कार्य-सिद्धि नाम-भक्ति से होगी॥

अन्त-समय जब आएगा तो
डूबते तुझ को देर न लगेगी।
नाम-साधना कर ले अब तो,
मौत जल्द ही आ जाएगी॥

तुका, निरर्थक बातें ना कर,
अब तू केवल प्रभु का ध्यान कर॥

जरा कर्णमूळीं सांगों आली गोष्टी
गाथा 2686

फ़क़ीर बना दे

सन्तान न देना, मोह में बँधूँगा,
तू ना मुझको याद रहेगा।
धन, सौभाग्य भी देना ना प्रभु!
इनसे मन परेशान रहेगा।
तुका कहे, मुझे फ़क़ीर बना दे,
मन में सदा तेरा वास रहेगा॥

नको देऊं देवा पोटीं हें संतान
गाथा 2863

सब कर्म हैं प्रभु के लेखे अब

क्रियमाण, प्रारब्ध और संचित,
सब कर्म हैं प्रभु के लेखे अब।
मेरा इनसे रहा न नाता,
जरा-मरण का दुख न मुझे अब॥

द्वैत, अद्वैत किसी को ले लें,
प्रभु-सत्ता दोनों माने हैं।
तुका कहे, प्रभु मेरे अन्दर
खेल अपना हर पल खेले है॥

संचित प्रारब्ध क्रियमाण
गाथा 2932

समझ लो, मुझको प्रभु नचाता

अहं मिटा, मैं मिल गया प्रभु में,
तन प्रभु को कर दिया समर्पित।
किसी की सेवा करनेवाला
मैं अब कौन? मैं तो प्रभु को अर्पित॥

अपनी कला से कठपुतली को
सूत्रधार जैसे भी नचाता।
नाचती वैसे ही कठपुतली,
समझ लो, मुझको प्रभु नचाता॥

बोलता हूँ मैं बिलकुल वैसे
प्रभु जैसे मुझसे बुलवाता।
संशय कोई जागे मन मेरे
इसका प्रश्न कहाँ रह जाता॥

पाप या पुण्य, क्या करता हूँ मैं,
प्रभु ही जाने, वही करवाता।
मैं कर्ता और कार्य है मेरा,
यह सम्बन्ध तो रह ना जाता।
देह के बन्धन टूट गए सब,
सुन लो, तुम्हें जो तुका बताता॥

आम्ही मेलों तेव्हां देह दिला देवा
गाथा 2947

सुगन्ध सार, मोल मिलता जिसका

अति कुरूप कस्तूरी, लेकिन
सुगन्ध सार, मोल मिलता जिसका।
चन्दन-वृक्ष भी नहिं होता सुन्दर,
बढ़ता मोल सुगन्ध से उसका॥

देखने में पारस सुन्दर क्या?
लोहा छुए, महँगा हो जाता।
गला दें यदि तलवार को हम तो
नाम-मात्र है मोल रह जाता।
धार के कारण शस्त्र यह नहिं तो
एक हज़ार तक में बिक जाता॥

तुका, जाति का महत्त्व न कोई,
नाम जपे जो, धन्य है सोई॥

कस्तूरीचें रूप अति हीनवर
गाथा 2984

वाणी में रस अमृत का ही

अमृत-बेल लगे अमृत-फल,
फल में बीज भी अमृत का ही।*
अमृत-बेल हैं सन्त, अमृत-फल
सन्त-वचन, बीज अमृत का ही।
सन्तों का संग दे प्रभु! जिनकी
वाणी में रस अमृत का ही॥

उत्तम भोजन सुखद कण्ठ को,
देह को देता कान्ति अरु पोषण।
आस-पास के द्रुमों† को अपनी
वास से करे सुवासित चन्दन।
तुका, यदि सन्त-संग मिल जाए,
हम भी हो जाएँ सन्तों सम॥

अमृताचीं फळें अमृताची वेली
गाथा 3045

* **बीज...ही**—भाव यह है कि सन्त के दिये गुरु-मन्त्र से जीव को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।
† **द्रुमों**=वृक्षों।

नाम जपो तो

नहीं समझ में है जो आता,
नाम जपो तो समझ में आए।
नहीं दिखाई है जो देता,
नाम जपो तो वह दिख जाए॥

नहीं कथन हो सकता जिसका,
नाम जपो तो व्यक्त हो जाए।
नहीं मिलन हो सकता जिससे,
नाम जपो ख़ुद मिलने आए॥

नहीं प्राप्ति हो सकती जिसकी,
नाम जपो, हो प्राप्ति अपार।
पूर्णतया आसक्त जो जग में,
नाम जपें, हो जाएँ पार॥

न कळे तें कळों येईल उगलें
गाथा 3047

तू मुझमें, मैं तुझ माहीं

बीज के अन्दर तरु रहे,
  बीज रहे तरु माहीं।
तेरा मेरा यही है नाता,
  तू मुझमें, मैं तुझ माहीं॥

जल से उठती लहर है
  रहती है संग उसी के।
जिसका यह प्रतिबिम्ब था,
  हुआ विलीन उसी में॥

तरुपर बीजा पोटीं
गाथा 3069

व्यर्थ गँवाते अपना जीवन

शक्कर लदती वृष की पीठ पर,
  खाने को मिलता घास-फूस।
पेटियाँ माल की चाहे ढोता,
  खाता काँटे ही है ऊँट॥

व्यर्थ काम-काज सब जग का,
  आशा-तृष्णा इससे बढ़ती।
कर्म-जाल में बँधी आत्मा
  यम के हाथ में है जा पड़ती॥

लाभ उठा ले जो सो जाने
  कितना मूल्यवान् है नर-तन।
बाक़ी तो सब जीव बेचारे
  व्यर्थ गँवाते अपना जीवन॥

अरे गँवार! सयाना हो अब,
  कहता तुझसे तुका यही।
चौरासी के चक्कर में तू
  भटक नहीं, अब भटक नहीं॥

साकरेच्या गोण्या बैलाचिये पाठीं
गाथा 3070

कर लो सीढ़ी राम-नाम को

प्रेम हो जाए राम-नाम से
  तो कट माया-जाल यह जाए।
प्रेम हो जाए राम-नाम से
  तो भव-सागर सूख यह जाए॥

ज़रा बताओ तो तुम मुझको,
  कौन ऐसा बलवान् हुआ है।
धर्म-कार्यों से कलियुग में
  भव-सागर को तर जो गया है॥

करो न अब अध्ययन वेदों का,
  ना करो संचय शास्त्र-ज्ञान का।
पड़ो न अब तुम इस चक्कर में,
  करो निरन्तर जाप नाम का॥

योगाभ्यास कठिन होता है,
  आसानी से हो ना विरक्ति ।
करके संगति अब सन्तों की
  भाग्यवान् बन कर लो भक्ति ॥

अनुष्ठान तजो, बुद्धि से भी
  ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति न होती।
कर लो सीढ़ी राम-नाम को,
  राम तक पहुँच उसी से होती।
तुका, भेद सन्तों ने बताया,
  शान्ति न प्राप्त और युक्ति से होती॥

तुटे मायाजाळ विघडे भवसिंधू
गाथा 3113

नाला नाला नहीं है होता

मेरे लिये प्रभु-रूप हैं अब सब
  गुण-दोष मेरे हो गए लुप्त।
अच्छा हो गया यह, बहुत अच्छा,
  इस महालाभ से मन परितृप्त॥

बिम्ब* दर्पण में भिन्न दिखता है,
  वस्तुतः वस्तु से एक है होता।
तुका, समुद्र में मिल जाने पर
  नाला नाला नहीं है होता॥

देव जाले अवघे जन
गाथा 3132

---

* **बिम्ब**=प्रतिबिम्ब।

देर करेगा, चख न सकेगा

राम-नाम की बेल है फैली,
  फूलों फलों के भार से* डोले।
ले अब गरुड़ की गति मेरे मन!
  फल-फूल खाकर तृप्त तू हो ले॥

मिठास बीज† में मूल‡ की, फल§ का
  ले ले स्वाद जब तक ले पाए।
देर करेगा, चख न सकेगा,
  पल-पल अवसर हाथ से जाए॥

हरिनामवेली पावली विस्तार
गाथा 3254

---

* **फूलों...से**—आन्तरिक मण्डलों के आनन्द-दायक अनुभवों की ओर संकेत है।

† **बीज**=नाम।

‡ **मूल**=प्रभु।

§ **फल**=प्रभु से मिलाप।

याचना एक यही है

क्या माँगूँ कुछ और किसी से?
  माँगना जिससे, दूर नहीं है।
माँगूँ जो मैं पदवी इन्द्र की,
  वह तो रहती सदा नहीं है॥

ध्रुव का स्थिर पद माँगूँ यदि मैं,
  इच्छा सृष्टि के परे न जाए।
स्वर्ग-भोग माँगूँ तो यहीं मैं
  लौटूँ क्षीण जब पुण्य हो जाए॥

लम्बी आयु क्या माँगूँ मैं?
  आत्मा कभी मरती ही नहीं है।
एकता माँगूँ प्रभु से, अटूट वह,
  तुका, याचना एक यही है॥

काय मागावें कवणासी
गाथा 3380

आ बसता प्रभु जिसके अन्दर

आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
वह साधारण मनुष्य न रहता।
आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
उसके लिये संसार न रहता॥

आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
वह प्रभु से है अलग न रहता।
आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
आशा, मोह से बँधा न रहता॥

आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
बहुत बातें वह नहीं है करता।
इससे उसके वचनों को कभी
मैल झूठ का नहीं है लगता॥

आ बसता प्रभु जिसके अन्दर,
माया-जाल से छूट वह जाता।
उसके लिये संसार यह सारा
प्रभु-रूप ही है हो जाता॥

प्रभु ने बलात्* तुका के अन्दर
स्थान अपना अब बना लिया है।
अन्दर उसके आ बसने का
हर चिह्न हो प्रकट गया है॥

देवाची ते खूण आला ज्याच्या घरा
गाथा 3446

* **बलात्**=बलपूर्वक।

मत समझो तुम

एक बार देह ख़ाली कर दी,
स्थान दे दिया प्रभु को अन्दर।
मेरी सँभाल का पूरा ज़िम्मा
अब तो है प्रभु के ही ऊपर॥

मेरे अहं के मर जाने से
आ बसा प्रभु मेरे अन्दर।
ज्योति कभी ना बुझनेवाली
जल रही है अब मेरे अन्दर॥

मत समझो तुम, हो गया है
ऐसा एक ही बार के श्रम से।
तुका कहे, यही अच्छा होगा,
कहूँ न आगे कुछ भी तुमसे॥

एका वेळे केलें रितें कलिवर
गाथा 3502

जैसे गौ का ध्यान बछड़े में

सन्तों के उपकार का वर्णन
  कैसे करूँ मैं? नहीं है संभव।
नित्य जगाते मुझे, क्या दूँ मैं
  जिससे ऋण उतरे? नहीं संभव।
प्राण भी रख दूँ यदि चरणों में,
  होंगे कम, उऋण होना असंभव॥

सहज वचन भी उनके हितकर,
  परिश्रम से मुझे शिक्षा देते।
गौ का ध्यान जैसे बछड़े में,
  सँभाल तुका की ऐसे करते॥

काय सांगों आतां संतांचे उपकार
गाथा 3656

माँगूँ ना मैं कभी भी कुछ भी

रख दिया मन तेरे चरणों में,
  दृढ़ विश्वास अब तुझपर मेरा।
चिन्ता नहीं रही कोई मुझको,
  पक्का निश्चय है यह मेरा।
चाहे तारे, चाहे डुबो दे,
  सदा कहा मानूँगा तेरा॥

पता नहीं, प्रभु! किस तरह तूने
  खींचा सत्य की ओर है मुझको।
पर वह सब स्वीकार करूँगा
  जो कुछ तू दे देगा मुझको॥

माँगूँ ना मैं कभी भी कुछ भी,
  कृपादान यह दे दे मुझको।
अगर नहीं, तो क्या करूँ सेवा,
  प्रभु! यह तो समझा दे मुझको।
करूँ मै कुछ, या जो हो, देखूँ,
  तुका कहे, यह बता दे मुझको॥

विश्वास धरूनि राहिलों निवांत
गाथा 3808

डुबकी लगाओ मन! हरि-चरणों में

डुबकी लगाओ मन! हरि-चरणों में,
भागो न विषयों के रस के पीछे।
आएँगे दिन जब कुल सुख मिलेगा,
अन्त न उसका जो कल्प* भी बीते॥

कष्टकर चक्र से आवागमन के,
पा लोगे मुक्ति बिन भारी तप के।
अभी तो तुमसे यही मैं कहूँगा,
नारी औ धन† को जानो तुल्य विष के।
उपकार होगा तुम्हारा यह मुझपर,
पार पहुँच जाएँगे दोनों‡ भव-जल के॥

देवाचिये पायीं देईं मना बुडी
गाथा 3810

* **कल्प**=1000 महायुग, महायुग=सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, ये चारों युग।
† **नारी औ धन**—काम और लोभ से अभिप्राय है।
‡ **दोनों**=आत्मा तथा मन।

माँग लिया मन मेरा मुझसे

देकर अपना प्यार मुझे तुमने
माँग लिया मन मेरा मुझसे।
सो नहीं कुछ भी अब लेना
मुझको तुमसे, तुमको मुझसे॥

कैसे तुम्हें उदार कहें अब
एक वस्तु दी, दूसरी ले ली।
जो दे दी, वह थोड़ी-सी दी,
पर जो ले ली, बहुत-सी ले ली॥

अन्य विचार अब रहा न कोई,
ले लिया तुमने मुझसे सब कुछ।
मन ही था मेरी कुल पूँजी,
ले ली तुमने, बचा नहीं कुछ॥

कहे तुका, अब तड़प रहा हूँ,
और प्रेम हित तरस रहा हूँ॥

देऊनियां प्रेम मागितलें चित्त
गाथा 3818

जीव जो तुझमें मिल जाता है

तुझे सामने देख चुका हूँ,
  दृष्टि अब दूसरी ओर मुड़े ना।
मन लिपटा तेरे चरणों से,
  प्रभु! यह उन्हें कभी छोड़े ना॥

नमक जब घुल जाता पानी में,
  फिर वह कभी अलग नहीं होता।
जीव जो तुझमें मिल जाता है,
  वह भी कभी अलग नहीं होता॥

तुका कहे, तेरे चरणों पर
आत्मा मैंने कर दी निछावर॥

तुज पाहातां समोरी
गाथा 3843

हो जाए प्रभुमय सब सृष्टि

ध्यान जगदीश का करते-करते,
  मन-सहित तन पलट गया है।
अहं खो गया प्रभु में मेरा,
  कहने को क्या रह गया है॥

प्रभु-प्रेम में मन जब डूबे,
  हो जाए प्रभुमय सब सृष्टि।
तुका कहे, अब क्या बोलूँ मैं,
  हरि की ओर मुड़ गई हर वृत्ति॥

ध्यानीं ध्यातां पंढरिराया
गाथा 4077

कृपया मनोरथ कर दे पूरन

नर नारी बालक में, सबमें,
दर्शन हों मुझे केवल तेरे।
तू ही है हर कोई, हे प्रभु!
संशय रहे न मन में मेरे॥

रहूँ विरक्त सदा विषयों से,
निन्दा, द्वेष, द्वन्द्वों से मुक्त।
काम, क्रोध ना जागें मुझमें,
दोष ये सब हो जाएँ लुप्त॥

तन से, मन से औ वाणी से,
लगा रहूँ मैं तेरे चरणन।
कहे तुका, प्रभु! बन तू सहायी,
कृपया मनोरथ कर दे पूरन॥

नर नारी बालें अवघा नारायण
गाथा 4113

नाम का मुख में अखण्ड सुमिरन

यदि मुख में हरि-नाम बसा हो,
भ्रम-फन्द जगत् का रहे कहाँ।
खाते-पीते, बोलते, चलते,
करें यदि सुमिरन, सुखी यहाँ।
किसी भी काम में लगे होओ तुम,
सदा प्रभु साथ ही रहे यहाँ॥

नाम का मुख में अखण्ड सुमिरन,
भक्ति यह मुक्ति से बढ़कर जानो।
भक्त इससे प्रभु-रूप हो जाता,
तुका के अन्दर प्रकट प्रभु जानो॥

मुखीं विठ्ठलाचें नाम
गाथा 4161

घोर कष्ट भोगेगा पापी

समझे न पापी, सब जीवों में
  जान उस जैसी ही है होती।
गला काटता है वह उनका,
  आत्मा प्रभु है, सबमें होती॥

पशुओं में भी वास है प्रभु का,
  जाने नहीं क्या निष्ठुर पापी।
पशु तो चीख़ता-चिल्लाता है,
  कैसे हाथ से काटे पापी।
तुका, मिलेगा नरक नीच को,
  घोर कष्ट भोगेगा पापी॥

जीवें जीव नेणे पापी सारिका चि
गाथा 4178

जाल से मुझे छुड़ाओ भगवन्!

मन भव-जाल में फँसा हुआ है,
  ममता ने है मुझे बौराया।
जाल से मुझे छुड़ाओ भगवन्!
  निवारो कष्ट जो मुझ पर आया॥

बकबक की आदत है मुझको,
  तेरे नाम व रूप से टूटा नाता।
आगे राह में कई बाधाएँ,
  गति अब तुका की धीमी दाता॥

चित्त गुंतलें प्रपंचें
गाथा 4182

जग-प्रपंच में नहीं फँसो तुम

गुड़ न बटोरो, चखो मिठास,
नमक को छोड़ो, ले लो स्वाद।
जग-प्रपंच में फँसो नहीं तुम,
निर्लेप रहो, साधो परमार्थ॥

शक्कर का फिर बने न गन्ना,
गर्भवास मेरा फिर कैसे।
भूना बीज, बनाया भूँजा,
जन्म-मरण फिर होगा कैसे॥

यह तन जब हो गया निरर्थक,
मिलेगा क्योंकर और आकार।
सारे जग में, अब घट-घट में,
तुका को दिखता अपरम्पार॥

गुळ सांडुनि गोडी घ्यावी
गाथा 4269

वही हूँ मैं

आँखों में मेरी सतगुरु ने
डाला चेतना का जो अंजन।
लाल नहीं था, ना ही श्वेत था,
ना काला वह निर्मल अंजन।
ना ही सुनहरी चमक थी उसमें,
रंगहीन था निर्मल अंजन॥*

दिव्य दृष्टि मिली उससे मुझको,
द्वैत-अद्वैत का भेद रहा ना।
वस्तुओं, देशों और कालों के
भेद का मुझको बोध रहा ना॥

आत्मा धुल विश्वरूप हो गई,†
जग-प्रपंच प्रभु-रूप हो गया।
वहीं हूँ मैं, वह प्रभु ही हूँ मैं,
मुझे यह अद्‌भुत अनुभव हो गया॥

'वही हो तुम'—जान लिया तुका ने,
उसी मैं है वह विलीन हो गया।
पाया ब्रह्मानन्द तुका ने,
ब्रह्मानन्द में मग्न हो गया॥

रक्त श्वेत कृष्ण पीत प्रभा भिन्न
गाथा 4313

---

* **रंगहीन...अंजन**—पहले तीन रंगों का क्रमशः रज, सत्त्व और तम, इन तीन गुणों से सम्बन्ध है और सुनहरी चमक का मन की पवित्रता से। जिस चेतना का यहाँ उल्लेख है, वह तीनों गुणों और मन के जगत् से परे की चेतना है।

† **आत्मा...गई**—भाव यह है कि आत्मा निर्मल होकर प्रभु से अभेद हो गई जो विश्वरूप है।

हिसाब बराबर कर अब जल्दी

भक्ति का ऋण ले रखा है तूने,
चरण तेरे मेरे पास हैं गिरवी।
ब्याज के रूप में प्रेम दे मुझको,
हिसाब बराबर कर अब जल्दी॥

मैं तो ऐसा साहुकार हूँ,
जो ऋणी को ऋण-मुक्त ना करता।
नाम के रूप में मिला जो रुक़्क़ा,
नित जप-जप सँभाल से रखता॥

प्रभु! बुला ले चाहे पंचायत,
मुझे आपत्ति कोई न होगी।
सतगुरु हैं उस ऋण के साक्षी,
तुका को चिन्ता भला क्यों होगी॥

भक्ति ऋण घेतले माझें
गाथा 4320

एकरूप नित्य निर्मल प्रभु से

मायातीत धुर-धाम में मैंने
घर अपना अब बना लिया है।
निराकार प्रभु का वहाँ मुझको
साथ निरन्तर प्राप्त हुआ है॥

पूर्ण रूप से अभेद हो गया
हूँ मैं कल्पनातीत उस प्रभु से।
टूट कभी भी नहीं सकती है
पा ली है जो एकता प्रभु से।
अहंभाव नहीं रहा तुका में,
एकरूप नित्य निर्मल प्रभु से॥

निरंजनीं आह्मीं बांधियेलें घर
गाथा 4326

शब्द सुनाकर प्रभु ने

दूर किये दुविधाएँ और संशय,
सत्य-बोध की अतीव कृपा की।
आत्मा पहुँचे, मिल ले पिय से,
अति सुखदायक सेज बिछा दी।
आत्मा मेरी प्रभु ने ऊपर
परम-धाम में पास बुला ली॥

माता जैसे लोरी गाकर
बेटे को है गोद सुलाती।
शब्द सुनाकर प्रभु ने आत्मा
अपने रूप में वहाँ मिला ली॥

पांडुरंगें सत्य केला अनुग्रह
गाथा 4327

ज्ञान की बातें काहे करते

मन नहीं निर्मल, फिर झंझट में
शुचि-अशुचि के क्यों हो पड़ते।
पाठ किये और हृदय न बदले,
ग्रन्थ इकट्ठे क्योंकर करते॥

झाँझ मृदंग बजाते क्यों जब
प्रभु-प्रेम में हो नहीं रँगते।
करनी तो कथनी से भिन्न है,
ज्ञान की बातें काहे करते।
तुका कहे, अहंकार न हितकर,
आडम्बर फिर क्यों हो रचते॥

काय बा करिशी सोवळें ओवळें
गाथा 4332

सतगुरु के चरणों में मैंने

सतगुरु के चरणों में मैंने
मस्तक अपना रख दिया था।
हाथ बढ़ाकर उन्होंने अपने
मुझे प्यार से उठा लिया था॥

अति प्रसन्न हो बड़े प्रेम से
नमन दुबारा किया था उनको।
पुनः पुनः मैं, बार-बार मैं,
नमता हूँ वन्दनीय सतगुरु को।
तुका कहे, नित जपता हूँ मैं
नाम उन्होंने दिया जो मुझको॥

सद्गुरूचे चरणीं ठेविला मस्तक
गाथा 4335

महती कृपा यह हुई जब उनकी

आशिष जिस पल दी सतगुरु ने,
हृदय प्रफुल्लित हो गया मेरा।
जान लिया था यह सतगुरु ने,
क्या सोचता है मन मेरा॥

बड़े आनन्द से, बड़ी उमंग से,
भरी हुई थी बातें उनकी।
ख़ुशी से झूम उठा मन मेरा
महती कृपा यह हुई जब उनकी॥

सद्गुरुने मज आशीर्वाद दिला
गाथा 4336

कीर्तन मत छोड़ना तुम तब भी

सात दिन से ना खाया हो कुछ,
कीर्तन मत छोड़ना तुम तब भी।
फटे जो सिर, तन टूट रहा हो,
नाम का जाप ना छोड़ना तब भी।
तन के दो टुकड़े हो जाएँ,
रंग कीर्तन का तजो न तब भी॥

जिसका नाम की उपासना का
निश्चय इतना दृढ़ होता है।
तुका है कहता, उसके अन्दर
प्रभु का निरन्तर वास होता है॥

सातादिवसांचा जरी जाला उपवासी
गाथा 4338

छूटेगा नहीं किसी तरह भी

पुराणों में कहा व्यास ने, निगुरा
  बोले तो बकबक प्रेत की मानो।
कहे तुका, मुख लखो न उसका,
  सदा अछूत उसे तुम जानो॥

छूटेगा नहीं किसी तरह भी,
  नर-तन उसका निष्फल जानो।
पुराणों का, गत सन्तों का भी,
  यही है कहना, सत्य यह मानो॥

सद्गुरुवांचूनि प्रेतरूप वाणी
गाथा 4341

बुद्धि यह उस तक पहुँचे कैसे

वेद न समझे तेरी महिमा,
  इसीलिये तो मौन रहे वे।
मन की गति सर्वत्र पवनवत्,
  पर तुझ तक ना पहुँच सके यह॥

चन्द्र सूर्य ने ज्योति ली जिससे
  बुद्धि यह उस तक पहुँचे कैसे।
तेरी महिमा सहस्रमुख* ना
  बखान पाए, मैं गाऊँ कैसे॥

तुका कहे, मैं बाल, तू मैया,
मुझ पर छाया रखना मैया॥

न कळे महिमा वेद मौनावले
गाथा 4363

---

* **सहस्रमुख**=पुराणों में वर्णित सर्पराज शेषनाग जिसके हज़ार मुख बताए गए हैं और जिसे भगवान् विष्णु की शय्या बताया गया है।

चरण-धूलि जब सन्त की मिलती

चरण-धूलि जब सन्त की मिलती,*
  जलता बीज इच्छा का सहज में।
राम-नाम का प्रेम उपजता,
  सुख-चैन बढ़ता पल-पल में॥

आँखों से अश्रु-धारा बहती,
  कण्ठ प्रेम से रुँध जाता है।
अन्तर में फिर स्वरूप राम का
  साक्षात् प्रकट हो जाता है।
सरस, सरल साधन है नाम यह,
  पूर्व पुण्यों से जन पाता है॥

संतचरणरज लागतां सहज
गाथा 4364

* **चरण-धूलि...मिलती**—नाम के सुमिरन से अन्तर में प्रकाश के दिखाई पड़ने से अभिप्राय है।

मेरे भी तो तुम्हीं एक हो

विधवा का हो एक ही बेटा,
  निशि-दिन उसी में विधवा का चित।
मेरे भी तो तुम्हीं एक हो,
  धक्का मुझको प्रभु! देना मत॥

मेरा तुमसे प्यार है ऐसा,
  सुपूत का पिता से जैसा प्यार।
मेरे सब संकल्पों का यह
  प्यार ही होता है आधार॥

पतिव्रता के मन में जैसे
  पति का ही होता है वास।
तुका के मन में भी वैसे ही
  तुम्हारा केवल है अब वास॥

विधवेसि एक सुत
गाथा 4365

मैं भी शरण तुम्हारी आया

गंगा गई जब समुद्र में मिलने,
देता स्थान यदि समुद्र उसे ना।
किसके पास तब जाती गंगा?
ज़रा यह तो प्रभु! बता दे ना॥

जल जलचरों से रुष्ट कब होता?
बाल को स्थान ना दे कब माता।
मैं भी शरण तुम्हारी आया,
प्रभु! तुमने क्यों मौन है साधा॥

गंगा गेली सिंधुपाशीं
गाथा 4371

भक्ति-विहीन अभागा जानो

हरि-भक्ति बिन व्यर्थ है जीवन,
शव को अलंकृत करना जानो।
हरि-चर्चा से रिक्त जो वाणी,
भाँड का सभा-प्रमोदन जानो॥*

भक्ति बिना धार्मिक कार्यों को
साँप के तन की मृदुता जानो।
और अधिक क्या कहे तुका अब?
भक्ति-विहीन अभागा जानो॥

हरीविण जिणें व्यर्थ चि संसारीं
गाथा 4391

* **सभा-प्रमोदन**=सभा को प्रसन्न करना।

उड़ो, सहायता को आ जाओ

पतितपावन प्रभु, उदार कृपालु है,
विरद यह झूठा पड़े तुम्हारा।
'नेति, नेति' कह वेद हो गए चुप,
पार ना वे पा सके तुम्हारा॥

पुकार यह तुम तक पहुँचे कैसे?
पाप विघ्न बन सामने आए।
भाग्यवान् कौन भक्त था जिसकी
तुमको याद दिलाई जाए॥

तुका कहे, प्रभु! दया करो तुम,
मेरे धैर्य की परीक्षा ना लो।
मेरी दशा की ओर ध्यान दो,
उड़ो, सहायता को आ जाओ॥

उदार कृपाळ पतितपावना
गाथा 4402

गुरु के बिना कभी ना पाएँ

ब्रह्म-ज्ञान होता जब गुरु के
मुख से हमें दीक्षा मिल जाए।
प्रभु के प्रेम-स्वरूप का ज्ञान हम
गुरु के बिना कभी ना पाएँ।
कैसा है प्रेममय स्वरूप वह
वेद-पुराण यह बता न पाएँ॥

अन्य प्रयास सब निष्फल होंगे
कहे तुका, छोड़ो तुम उनको।
उस स्वरूप का ज्ञान तो केवल
सन्तों से ही मिलेगा तुमको॥

गुरुचिया मुखें होइल
गाथा 4407

सच्ची नौका

तुमको छोड़ शरण लूँ किसकी?
जोड़े हाथ जाऊँ किस पास।
तुम बिन होगा कौन सहायी—
यह तो मन में करो विचार॥

दीनबन्धु तुम, दया का सागर,
करते हो जग का उद्धार।
तुका, तुम्हीं सच्ची नौका जो
ले जाती भवसागर पार॥

तुजवांचून कोणा शरण
गाथा 4444

हरि रहता तन के अन्दर

हरि रहता तन के अन्दर,
  हतभाग्य ढूँढ़ते बाहर।
वह अति निकट है, व्यर्थ ही
  खोजें तीर्थों में जाकर॥

कस्तूरी तो नाभि में,
  मृग व्यर्थ खोजता वन में।
गन्ने में जैसे शक्कर,
  घटवासी मिले वह घट में॥

दूध के अन्दर मक्खन,
  कुछ नहीं जानते मथना।
मूर्खो! यदि हरि को चाहो,
  खोजो ना क्यों तन अपना॥

देहीं असोनियां देव
गाथा 4482

दान वे ऐसा देते

मूर्ति पूर्ण आनन्द की गुरुजी
  नश्वर पदार्थ हमसे ले लेते।
नष्ट कभी भी नहीं है होता
  जीवन जो बदले में देते॥

दान वे ऐसा देते जो हम
  इन आँखों से देख नहिं सकते।
इन कानों से सुना ना जाए,
  बाहरी ध्यान से पा नहीं सकते॥

हाथों से हम पकड़ ना पाएँ,
  मन से मनन भी कर नहिं सकते।
ऐसी अद्‌भुत दात वह जिसका
  वाचा वर्णन कर नहीं सकते॥

सतगुरु हैं परमेश्वर—सत्य यह
  जो हृदयगंम हैं कर लेते।
तुका कहे, सतगुरु हैं उनको
  गुप्त भण्डार शब्द का देते॥

अशाश्वत घेती शाश्वतासी देती
छन्दबद्ध गाथा 41

मगर अभिन्न सतगुरु को पाएँ

सगुण देवता, सतगुरु निर्गुण,
चाह है, चरण उनके मिल जाएँ।
अन्य सभी प्राणी प्रभु से भिन्न,
मगर अभिन्न सतगुरु को पाएँ।
सतगुरु के चरणों में हमको
नित्य परम आनन्द मिल जाए॥

यह सत्य जो मन में बैठे
तो चार प्रकार की मुक्ति।*
ना भी अगर हम माँगें,
घर की दासी बन जाती॥

देव तो सगुण सद्गुरु निर्गुण
छन्दबद्ध गाथा 43

* **चार...मुक्ति**=पुराणों में मुक्ति चार प्रकार की बताई गई है—सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य तथा सायुज्य।

वैद्य-नाथ से मिल लिया जब

जिह्वा मेरी तृप्त हो गई
रँगकर निर्मल हरि के सुमिरन।
याद हमेशा रहे तू दाता!
ताकि पाप न आए मेरे मन॥

उदित भास्कर हो जाए जब,
अन्धकार तब बचे कहाँ।
वैद्य-नाथ* से मिल लिया जब,
रोग† तुका को रहे कहाँ॥

रसना हे धाली
छन्दबद्ध गाथा 45

* **वैद्य-नाथ**=स्वर्ग लोक के वैद्य धन्वन्तरि। अभंग में सतगुरु को धन्वन्तरि बताया गया है।
† **रोग**=कोई मनोविकार।

प्रभु अगम्य जहाँ है रहता

ब्रह्माण्ड अनन्त समाए प्रभु में,
जीव-रूप प्रभु मेरे अन्दर।
प्रभु बिराजे तन-मन्दिर में,
खोजने जाएँ क्यों और मन्दिर॥

यथार्थ स्वरूप प्रभु का कैसा—यह
जानना हो तो जाओ तन-मन्दिर।
यह अनुभव तो तब ही होगा
जब तुम खोज करोगे अन्दर॥

विश्व-रूप प्रभु, उसकी कोई
ना शाखा है, ना ही मूल है।
जीव-रूप उस प्रभु की कोई
ना तो जाति है, ना ही कुल है॥

प्रभु नित्य है, और अगम्य है,
ना मन्दिर, ना महल में रहता।
समय नहीं, ना अभाव समय का,
प्रभु अगम्य जहाँ है रहता॥

वहाँ न भावना, ना ही भक्ति,
ना है मोक्ष और ना ही मुक्ति।
वहाँ न दिन चढ़ता-ढलता है,
ना आती-जाती है रात्रि॥

बाबाजी ने ही यह सारा
अनुभव मुझे प्रदान किया है।
तुका, उन्होंने धाम में अपने
वास स्थायी मुझे दिया है॥

अनंत ब्रह्मांडें जयाचे उदरीं
छन्दबद्ध गाथा 58

प्रभु तब भी था

जब ना पृथ्वी, ना तारे थे,
त्रिगुणातीत प्रभु तब भी था।
जब ना जल, अग्नि, प्रकाश थे,
निरंजन लोक में प्रभु तब भी था।
जब ना वायु, चन्द्र, सूर्य थे,
निर्विकार वह प्रभु तब भी था॥

तुका कहे, गुरु बाबाजी ने
कृपा यह महती मुझपर की है।
नन्ही-सी यह ज्योति जो मेरी
मेल उस परम ज्योति में दी है॥

जैं नव्हती पृथ्वी आणि तारांगण
छन्दबद्ध गाथा 71

सतगुरु का ज्योतिर्मय रूप

बीच आँखों के आँख तीसरी,
वही आँख है दसवाँ द्वार।
तन के नौ द्वारों को छोड़ो,
जा पहुँचो तुम दसवें द्वार॥

वह दरवाज़ा खोलो, देखो
सतगुरु का ज्योतिर्मय रूप।
वे ही विधि बताते जिससे
पहचानें हम वह स्वरूप॥

पूरन दीनानाथ हमें जब
खड़े सामने दिख जाते हैं।
माया के सब बुलबुले तब
फट जाते, लुप्त हो जाते हैं॥

कहे तुका, सतगुरु की सेवा
बिन हाथों करता हूँ मैं।
जन्म-मरण के चक्कर से अब
बाहर निकल गया हूँ मैं॥

दिठी माजी दिठी दशमद्वार आहे
छन्दबद्ध गाथा 74

तुम देखो अन्दर

पूरे तन में रमी आत्मा का
प्रकाश दिखे अन्दर की आँख से।
अन्दर प्रभु, दर्शन भी आन्तरिक
एकाग्रता के अभ्यास से॥

पूर्ण प्रभु सर्वत्र व्याप्त है,
सर्वत्र व्याप्त वह दिख सकता है।
देखने को पर आँखे बन्द कर
अंगुली से ढकना पड़ता है॥

चित्स्वरूप प्रभु आँखों के मध्य
बैठा है, तुम देखो अन्दर।
अँधेरे में वहाँ ध्यान से देखो,
दर्शन हो जाएँगे अन्दर॥

चैतन्याची मुस ओतिली सगळी
छन्दबद्ध गाथा 83

सोहं पार

अन्दर पिण्ड के छः चक्रों से
ऊपर, बहुत ऊपर, त्रिकुटी है।
तीन त्रिवेणी में मिलें, आगे
सुन्दर गंगा* ही बहती है॥

आत्मा स्नान†, सन्ध्या‡ नित करती,
रज§, तम¶ अपने नष्ट है करती।
गरजे अनाहत संगम के ढिग,
वह ध्वनि सोहं से उतरती॥

सोहं पार तुका जब जाता,
परम मित्र के दर्शन पाता॥

षडचक्रावरी त्रिकुटा अंतरीं
छन्दबद्ध गाथा 88

---

* **गंगा**=सुषुम्ना।
† **स्नान**=शब्द के पवित्र जल में नहाना।
‡ **सन्ध्या**=प्रभु का ध्यान।
§ **रज**=कर्मों की धूल।
¶ **तम**=अज्ञान का अँधेरा।

ज्ञान-चक्षु खोल देखो उसको

अन्दर तम में सूर्य चमकता,
ज्ञान-चक्षु* खोल देखो उसको।
आँख वह खोले बिन न दिखेगी
चमक उस सूर्य की प्रभा की तुमको।
और ना कभी दिखाई देगा
अपना यथार्थ स्वरूप ही तुमको॥

तुका को अन्दर दोनों दिखते,
स्वरूप भी प्रभु का और प्रकाश भी।
हर जीव में, हर पदार्थ में,
दिखता एक प्रभु का प्रकाश ही॥

आंधाराचे अंगीं प्रकाशला रवी
छन्दबद्ध गाथा 96

* **ज्ञान-चक्षु**=अन्तर्दृष्टि, अन्दर की आँख।

जो यह सत्य समझ जाते हैं

मेघ की छाया का उपयोग क्या?
लुप्त वह क्षण में हो जाती है।
सजीव होती चित्रित कठपुतली
कहीं ना देखी, ना ही सुनी है॥

देह औ विषय-सुख भी ऐसे ही,
नित्य नहीं, नष्ट हो जाते हैं।
तुका कहे, हरि-भक्त वे धन्य हैं
जो यह सत्य समझ जाते हैं॥

अभ्राची साउली उपेगासी नये
छन्दबद्ध गाथा 101

विश्व रहेगा क्या? यह बताओ

काढ़ लें आत्मा यदि तन में से,
बचेगा जड़ तन क्या? यह बताओ।
सूत काढ़ लिया जब पट में से,
पट बच पाया क्या? यह बताओ॥

काढ़ लिया जल ओले में से,
बचा तब ओला क्या? यह बताओ।
काढ़ लें प्रभु को विश्व में से तो
विश्व बचेगा क्या? यह बताओ॥

जड शोधोनिया चैतन्य काढिलें
छन्दबद्ध गाथा 102

क्या मैं आपको भेंट करूँ अब

मारकर जीते-जी सतगुरु ने
मुझे दिला दी विजय मृत्यु पर।
इससे है अब प्राप्त हो गया
आत्म-ज्ञान मुझे अपने अन्दर॥

रहा घूमता चौरासी में,
सदा साथ ही था अहंकार।
नाश हो गया है अब उसका,
धुल गया है सारा अहंकार॥

घाव लगे थे जो इस मन में,
सब के सब वे धुल गए हैं अब।
रसायन दे मेरे आत्म-स्वरूप का*
निरोग कर दिया है यह तन अब।
गुरु महाराज! इस कृपा के बदले
क्या मैं आपको भेंट करूँ अब॥

निजबोध जाला माझिये
छन्दबद्ध गाथा 106

* **रसायन...का**=मुझे यह अनुभव प्रदान करके कि मेरा वास्तविक स्वरूप आत्मा है, शरीर नहीं।

शब्द को ही जानो प्रभु

शब्द के रस का धन मेरे घर में,
  शास्त्र मेरा अभ्यास उसी का।
वही आधार मेरे प्राणों का,
  धन लोगों में बाँटूँ उसी का।
शब्द को ही जानो प्रभु, मैं करता
  पूजन, गौरव-गान उसी का॥

आम्हां घरीं धन शबदाचींच रत्नें
छन्दबद्ध गाथा 128

ये सिद्धान्त तो

प्रभु के चरण ही श्रेष्ठ तीर्थ हैं,
  स्नान है विषय-सुख से निवृत्ति।
प्रभु का नाम* ही रूप है उसका,
  अद्वैत का अनुभव सच्ची भक्ति ॥†

विरक्ति की अवस्था होती है जब
  संसार का कुछ भी प्रिय नहीं लगता।
किसी भी वस्तु में, किसी भी व्यक्ति में,
  मनुष्य आसक्त नहीं तब रहता॥

कर्ता न अपने आपको समझे,
  इसी में सुख, यह सत्य अनादि है।
तुका है कहता, ये सिद्धान्त तो
  वेदों में भी प्रतिपादित हैं॥

तीथीतीर्थ हरिपाय
छन्दबद्ध गाथा 375

---

* **नाम**=धुनात्मक नाम, अनाहत नाद।

† **अद्वैत...भक्ति** =सच्ची भक्ति वही है जिससे यह अनुभव हो जाए कि प्रभु ही एकमात्र अस्तित्व है, वास्तव में कहीं भी उसके सिवा और कुछ है ही नहीं।

दिखने लग जाएँ ये लक्षण जब

ध्यान में मग्न हो जाएँ प्रभु के
मन औ मति, प्रभु-कृपा यह जानो।
आध्यात्मिक अनुभव से मेरी
इच्छाओं की इति हुई जानो।
उलट गई मेरे मन की वृत्ति,
पकड़ा मुक्ति का मार्ग, यह जानो॥

प्रभु के नाम का अरु स्वरूप का
ध्यान तथा सेवा सन्तों की।
इनमें ही है रुचि अब मेरी,
स्तुति करता हूँ हरि के गुणों की॥

प्रभु के प्रेमी भक्त के मन में
दिखने लग जाएँ ये लक्षण जब।
कहता तुका, यह समझो प्रभु की
महती कृपा हो गई उसपर अब॥

जाणावी ती कृपा हरीची जाहली
छन्दबद्ध गाथा 684

आत्म-हिताय यह सब करने का

सन्तों की तुम करो संगति
और रहो अन्दर से निर्मल।
ध्यान रहे, लगने ना पाए
मन को कभी भी ममता का मल॥

जिसे अद्वैत कहा जाता है,
वास्तव में ब्रह्म-ज्ञान वही है।
आन्तरिक अनुभव के बिन तुमको
उस बारे कुछ कहना नहीं है॥

इच्छाओं का नाश करो और
सब इन्द्रियों को वश में करो तुम।
संकल्प-विकल्प न उठने पाएँ
मन में कभी, सचेत रहो तुम॥

ख़ुद को प्रभु से अलग समझना—
यह ग़लती तुम कभी ना करना।
आत्म-हिताय* यह सब करने का
यथाशक्ति प्रयास तुम करना॥

करोनि सत्संग राहे तूं निर्मळ
छन्दबद्ध गाथा 719

---

* **आत्म-हिताय**=आत्मा के कल्याण के लिये।

जब तुमको गले लगा लेगा

छोड़ो सब संकल्प-विकल्प तुम,
आराम से प्रभु को याद करो।
करो न तुम किसी और का चिन्तन,
केवल प्रभु का ध्यान करो॥

उस आनन्दमय रूप का अनुभव
करने का दृढ़ प्रयास करो।
सन्देह अनेक उठेंगे मन में,
प्रभु से करुणा की पुकार करो॥

परम पवित्र स्वरूप है उसका,
जब तुमको गले लगा लेगा।
तुका, तुम्हारे आगे-पीछे
तुमको केवल वही दिखेगा॥

संकल्पविकल्पा द्यावी
छन्दबद्ध गाथा 733

वही रास्ता अपनाएँगे

पहले जानेवाले जिससे
गए, वह रास्ता हम खोजेंगे।
वही रास्ता अपनाएँगे,
चरण-धूलि उनकी पूजेंगे॥

उन्होंने रस लिया था जिसका,
वही अमृत हम ग्रहण करेंगे।
अपने पिछले सब जन्मों के
कर्मों का हम दहन करेंगे।
धन अपरिमित बाँध गठरी में
साथ अपने हम वहन करेंगे॥*

हम जैसे जो अनाथ जगत् में,
जगन्नाथ वही नाथ है उनका।
लाभ ही लाभ हमें होगा इससे,
ध्यान करेंगे यदि एक उसका।
कीर्तन करेंगे अगर नाम का
और जपेंगे नाम हम उसका॥

जन्म-मरण मिट जाता इससे,
यह पथ है निश्चित और सुगम।
तुका, जीव ना बने रहेंगे,
परम-धाम जा पहुँचेंगे हम॥

पुढें गेले त्यांचा शोधीत मारग
जोग गाथा 13

---

* **वहन करेंगे**=ले जाएँगे।

धन्य-धन्य है उसका जीना

बातें तो सरल वैराग्य की,
पर जीवन कठिन है होता।
वैरागी होना सरल नहीं,
नहिं विश्वास दावों पर होता॥

ग्रास-ग्रास संग विष खाना है,
इच्छा-रहित हो जीवन जीना।
ऐसा जीवन जो जीता है,
धन्य-धन्य है उसका जीना।
चरण बसें उसके मन मेरे,
जिसका जीना ऐसा जीना॥

बोल बोलता वाटे सोपे
जोग गाथा 327

प्रेम उमड़ हृदय में आए

सुमिरूँ नाम जब, कण्ठ गद्‌गद् हो,
रोमांचित यह तन हो जाए।
ख़ुशी से आँसू बहें नयनों से,
प्रेम उमड़ हृदय में आए॥

प्रेम-मग्न अंग-अंग हो मेरा,
लीन कीर्तन में तन कर दूँ मैं।
गान करूँ मैं नाम का निशिदिन,
और प्रलय तक कुछ न करूँ मैं।
तुका कहे, सन्त-चरणों में ही
करता नित विश्राम रहूँ मैं॥

नाम आठवितां सद्‌गदित कंठी
जोग गाथा 418

उनसे कौन बड़ा दातार

धन्य वह क्षण जब मिला सतगुरु से,
चरणों से उनके लिपट गया।
संशय की खुल गई सब गाँठें,
अन्तर मेरा हो शान्त गया॥

कृपा हुई सतगुरु की मुझपर,
पहुँच गया भव-सागर पार।
मंगलमय अब जीवन मेरा,
उनसे कौन बड़ा दातार॥

धन्य काळ संतभेटी
जोग गाथा 480

लेते-देते प्रेम का सुख वे

होता सन्तों का निवास है
  प्रेम का एक अखूट निधान।
रंचक भी दुख वहाँ न होता
  बेचैनी का नहीं निशान॥

भिखमंगा बन वहाँ रहूँगा,
  भीख में मिल जाएगा प्यार।
सन्तों की निधि सबसे बढ़िया
  प्रभु ही जिसमें कुल धन-माल॥

कीर्तन उनका हर पल चलता,
  शब्दामृत उनका आहार।
लेते-देते प्रेम का सुख वे,
  प्रवचन की मण्डी में व्यापार॥

प्रेम-प्यार, बस, और नहीं कुछ,
  और नहीं कुछ वहाँ है मिलता।
तुका कहे, इसलिए वहाँ मैं
  याचक बनकर रहना चाहता॥

संतांचिया गांवीं प्रेमाचा सुकाळ
जोग गाथा 713

उसी में मिलता यह अद्‌भुत गुण

जान लड़ाकर की है भक्ति
  सुखमय हो ताकि अन्तिम दिन।
तृष्णा मिटी, तनिक नहीं चिन्ता,
  मन करता विश्राम है हर छिन॥

मंगलकारी नाम जो तेरा
  उसी में मिलता यह अद्‌भुत गुण।
सोच-सोचकर ख़ुश होता हूँ
  नाम-भक्ति में बीता जीवन।
तुका, मेरी दुलहन बनी मुक्ति,*
  मौज में बीतेंगे बाक़ी दिन॥

याजसाठी केला होता
जोग गाथा 787

* **मेरी...मुक्ति**—भाव यह है कि मैंने जीते-जी मुक्ति पा ली है।

कई घरों में रह जब आए

जन्म कई जब भुगत लिये तो
सौभाग्य मिला यह तुमको।
कर लो भगवान् की भक्ति
नर-देह मिली जब तुमको॥

कई घरों में रह जब आए
तो भवन यह तुमने पाया।
कहे तुका, विरले वे सयाने,
यह समझ में जिनकी आया॥

बहुता जन्मां अंतीं
जोग गाथा 803

अभ्यास देता है पूर्ण सफलता

जड़ जीवन्त, चट्टान फोड़ती,
अभ्यास देता है पूर्ण सफलता।
कार्य कठिन तब तक ही जब तक
दृढ़ निश्चय मनुष्य नहीं है करता॥

पत्थर भी कटता यदि उसका
रस्से से होता है घर्षण।
विष भी हमको पच जाता है,
नियम से करते हैं यदि सेवन॥

बच्चे के लिये क्या उदर में
माता के होता है स्थान।
पूछे तुका, बना लेता है
अचानक क्या वह अपना स्थान॥

ओलें मूळ भेदी खडकाचे अंग
जोग गाथा 848

पर रहे तेरे चरणों से प्यार

पेशा भाग्य में लिखा ही करूँगा,
  पर रहे तेरे चरणों से प्यार।
बाँधा तूने, बेबस हूँ, दाता!
  रुक-रुककर ढोता कर्म-भार॥

तन तो काम करेगा ही सब,
  मन से ना छूटे मूल काम*।
जगह-जगह मुझे जाना होगा,
  पर आलस छोड़ धरे मन ध्यान॥

करें इन्द्रियाँ काम सब अपना,
  इच्छा चरण-शरण की देना।
कहे तुका, है विनम्र प्रार्थना,
  काल के हाथ में मुझे न देना॥

आला भागासी तो करीं व्यवसाय
जोग गाथा 873

* **मूल काम**—प्रभु-भक्ति से अभिप्राय है।

परमार्थी की रहनी

अन्न और कपड़े उतने ही रखना
  हो जाए जिनसे गुज़ारा तुम्हारा।
कुटिया में भी वास कर सकते हो तुम,
  हो सकती है घर गुफा भी तुम्हारा॥

बसा लो हृदय में परमेश्वर को जिससे
  किसी मोह में बँधा मन रहे न तुम्हारा।
ना बोलो, न लोगों में बैठो तुम ज़्यादा,
  संयम हो बुद्धि, इन्द्रियों पर तुम्हारा।
कहता तुका, हर घड़ी राम सुमिरो,
  बन्ध से त्रिगुण के पा लो छुटकारा॥

निर्वाहापुरते अन्नआच्छादन
जोग गाथा 933

भगवान् है जिसका रक्षक

भगवान् है जिसका रक्षक,
कोई मार उसे नहीं सकता।
वह घूमता है जब वन में,
उसे काँटा भी नहीं चुभता॥

वह जल जाए या डूबे—
यह हो क़तई नहीं सकता।
विष मिल जाए यदि उसको
तो अमृत उसे है लगता॥

वह पथ से नहीं भटकता,
ना फन्दे में है फँसता।
यमराज भी उसको कोई
पीड़ा दे नहीं सकता॥

उसकी ओर यदि कोई
गोली या बाण है आता।
कहे तुका, उस अस्त्र को है
प्रभु उलटी ओर घुमाता॥

देव राखे तया मारील कोण
जोग गाथा 1017

प्रभु को बहुत अच्छा है लगता

कोई लेटे-लेटे कीर्तन करता,
निकट उसके प्रभु खड़ा है रहता।
बैठकर यदि कोई कीर्तन करता,
आनन्द से प्रभु झूमता रहता॥

खड़े-खड़े कोई नाम सुमिरता,
ख़ुशी से नाना नृत्य प्रभु करता।
राह चलते कोई नाम सुमिरता,
आगे-पीछे तैयार प्रभु रहता* ॥

तुका कहे, निज नाम का कीर्तन,
प्रभु को बहुत अच्छा है लगता।
प्रेम से वह उस नाम की ख़ातिर,
भव-सागर में कूद है पड़ता॥

निजल्यानें गातां उभा नारायण
जोग गाथा 1032

* **तैयार**=रक्षा करने के लिये उद्यत।

गोप्य है धन यह

लूँ आनन्द उसका एकान्त में,
मन में उमड़े प्रभु-प्रेम जो।
पार ना उसका पाया जाए
सुख देता है प्रभु-प्रेम जो॥

गोप्य है धन यह, पता किसी को
उसका क़तई न लगने देता।
दुर्जन को तो गन्ध भी उसकी
नहीं कभी मैं लगने देता॥

नज़र किसी की लग न जाए,
मेरे इस मनभाते रस को।
यह सोचकर, इस डर से मैं,
चुपचाप पचा लेता इसको।
तुका कहे, सुकुमार यह सुख है,
भार शब्दों का सह्य न इसको॥

आनंदे एकांती प्रेमें ओसंडत
जोग गाथा 1115

मरकर जो जीता वह ऐसा हो जाता

गाड़ो जो खूँटी तो पहले हिला लो,
कर लो तसल्ली कि पक्की लगी है।
फिर उस पर कुछ भी टाँग देना,
ग़लत ना होगा, संशय नहीं है॥

मरकर जो जीता वह ऐसा हो जाता,
सुख में भी दुख में भी स्थिरचित्त रहता।
हर्ष का हो अवसर या रोष का हो,
तुका कहे, अविचलित है वह रहता॥

हालवूनि खुंट
जोग गाथा 1247

हर कष्ट का करे निवारण

ब्रह्मरस* का पी लो काढ़ा,
  हर कष्ट का करे निवारण।
इसको पाने की चाह हो,
  किसी और का करो न सुमिरन।
हरि-नाम इसे पाने का
  एकमात्र उपयुक्त है साधन॥

रोग वह जन्म-मरण का
  है दूर हो जाता इससे।
दूसरा रोग कोई भी
  है नहीं बराबर जिसके।
तुम्हें रोग न कोई होगा
  अन्य प्राणी पीड़ित जिससे॥

ब्रह्मरस घेई काढा
जोग गाथा 1384

* **ब्रह्मरस**—ब्रह्मानन्द; यहाँ शब्दामृत से अभिप्राय है जिसका पान करने से ब्रह्म (प्रभु) में समा जाने के आनन्द की प्राप्ति होती है।

कमी किस चीज़ की है हो सकती

दु:ख दुर्दशा निकट न आते,
  जलकर दोष राख हो जाते।
सुख सभी लोटें चरणों में,
  हम महत्त्व ना उनको देते॥

हमको प्यारी दो ही चीज़ें,
  सन्त-संगति, हरि-नाम की भक्ति।
हम तो माँगें हरि की सेवा,
  भाग्यहीन, जो चाहते मुक्ति।
तुका, अन्तर में हरि समाया,
  कमी किस चीज़ की है हो सकती॥

दैन्य दु:ख आम्हां न येती जवळी
जोग गाथा 1432

तेरी चिन्ता नहीं उसे क्या?

परमेश्वर तो दयावान् है,
याद नहीं क्यों उसको करता।
वह अकेला ही तो सारे
जग का है प्रति पालन करता॥

कौन है माता की छाती में
बच्चे हित जो दूध है भरता।
बच्चा बढ़ता दूध भी बढ़ता,
कुल व्यवस्था प्रभु ही करता॥

वृक्ष ग्रीष्म में अंकुरित होते,
उन को देता कौन है जल।
तेरी चिन्ता नहीं उसे क्या?
उस अनन्त को याद तू कर।
तुका, ध्यान सतत कर उसका
नाम है जिसका विश्वंभर॥

कां रे नाठविसी कृपाळु
जोग गाथा 1593

डाल दो भार प्रभु पर चिन्ता का

डाल दो भार प्रभु पर चिन्ता का,
भोग लो जो भोगना पड़ जाए।
रक्षा करेगा दयानिधि उससे
संकट जो भी तुम पर आए॥

न हो भरोसा प्रभु पर जिसको,
दशा है उसकी दयनीय होती।
ज़िन्दगी भय से ग्रस्त जीव की
दुःखों का अम्बार है होती॥

शरण में जाओ केवल प्रभु की,
सबका पालन-पोषण करता।
तुका कहे, ऐसा नहिं कुछ भी
जो कुल-मालिक कर नहीं सकता॥

आलिया भोगासी असावें सादर
जोग गाथा 1636

चरण-कमल कहीं भूल न जाएँ

उदार-शिरोमणि तू, हे दाता!
  कृपा-याचना करता हूँ मैं।
करूँ नरस्तुति* मैं न कभी भी,
  हरि-कथा कभी ना बेचूँ मैं॥

पर दारा पर धन की इच्छा,
  मन मेरे ना आने देना।
सन्त-निन्दा, ईर्ष्या औरों से,
  यह भी मुझे न करने देना॥

देह-अभिमान न हो कभी मुझको,
  दोष ये मुझको छू ना पाएँ।
तुका कहे, विनती यह मेरी,
  चरण-कमल कहीं भूल न जाएँ॥

नरस्तुती आणि कथेचा विकरा
जोग गाथा 1867

* पुराने समय में कवियों को राजाओं की प्रशंसा में कविताएँ लिखनी पड़ती थीं।

उसकी सेवा भी कोई सेवा

जाप को बैठे ऊँघ आ जाए,
  तन यह सीधा टिका रहे ना।
बहुरूपिये का स्वाँग यह भक्ति,
  ऐसा जप कल्याण करे ना॥

कोई सांसारिक इच्छा रखकर
  की गई सेवा दूषित सेवा।
प्रभु-प्राप्ति भला कहाँ उससे,
  ऐसी सेवा निष्फल सेवा॥

छल अभिमान लिये मन में जो
  व्यक्ति करता हरि की सेवा।
तुका कहे, उपहास-पात्र वह,
  उसकी सेवा भी कोई सेवा॥

जपाचें निमित्त झोपेचा पसारु
जोग गाथा 2357

वह मिल जाए यदि इसको

जो लिखा भाग्य में होगा,
वह भोगूँगा मैं हँसकर।
मैं भार नहीं डालूँगा,
भगवान्! कभी भी तुझपर॥

चाहता हूँ मैं केवल
एक यही दात प्रभु तुझसे।
मुख में नाम हो तेरा,
ध्यान तेरा रहे मन में॥

ना गर्भवास फिर देना—
यह विनती नहीं हूँ करता।
पुन: जन्म लेने से
मैं बिलकुल नहीं हूँ डरता॥

हे माई-बाप! वही काफ़ी,
यह तुका जो तुझसे माँगे।
वह मिल जाए यदि इसको,
यह तेरे आगे नाचे॥

होईल तो भोग भोगीन आपुला
जोग गाथा 2971

धन्य आज का दिन, यह स्वर्णिम दिन!

मेरे लिये मिलाप सतगुरु से
उत्सव जैसा होता, मित्र।
पुण्य अपार होता है संचित,
प्राप्त अनन्त सुख होता, मित्र॥

यह वाणी जप में टिकी रही,
धन्य आज का दिन, यह स्वर्णिम दिन।
ऋण उतरे सतगुरु का कैसे,
तुका रख दे चरणों में जीवन॥

दसरा दिवाळी तोचि माझा सण
जोग गाथा 3029

मत समझो कि तुम हो कर्ता

तन किसकी सत्ता से चलता?
  बोलते हम किसकी शक्ति से।
देखना सुनना वही करवाता,
  मत चूको उसकी भक्ति से॥

मन में जो अहंकार उपजता,
  उसे उत्पन्न है प्रभु ही करता।
बचकर रहो, करो जो नेकी,
  मत समझो कि तुम हो कर्ता॥

वृक्ष के पत्ते जब हिलते हैं,
  प्रभु ही उन्हें हिलाता है।
मैंने किया—इस अहंकार का
  फिर स्थान कहाँ रह जाता है॥

बसा हुआ है सबके अन्दर,
  तुका कहे, वह बाहर भी है।
क्या है समस्त सृष्टि में जिसमें
  सर्वव्यापक का वास नहीं है॥

चाले हें शरीर कोणाचिये सत्ते
जोग गाथा 3038

नाम-सा सरल न साधन जग में

नर—तन जब मिल गया है तुमको,
  सोचो तुम, क्या महत्त्व है इसका।
धीरज धर चलो भक्ति-मार्ग पर,
  स्थिर करो मन को नहीं जो टिकता॥

सन्त-चरणों की शरण गहो तुम,
  प्रभु से प्यार करो निश्चय से।
ऐसा अगर करोगे तुम तो
  मुक्त हो जाओगे भव-भय से॥

नाम-सा सरल न साधन जग में,
  हर समय प्रेम से तुम करो भक्ति।
तुका कहे, वंश धन्य है उसका,
  अटल निश्चय से करे जो भक्ति॥

येऊनि नरदेहा विचारावें सार
जोग गाथा 3243

लाज रख ले अपने नामों की

कहें राजा भी तेरा दास मुझे,
सो कर अब तू सँभाल मेरी।
पतितपावन, नाथ अनाथों का,
लाज रख ले अपने नामों की॥

गुण-दोष जो मेरे देखेगा,
इति दोषों की न दिखेगी कहीं।
मैं जानता हूँ यह अच्छी तरह,
मन मेरा मुझसे कहे यही॥

जानूँ न तेरी सेवा करना,
तू जानता मन की दशा, हे प्रभु।
तू दया का सागर, कहे तुका,
मेरा तोड़ दे भव-बन्धन, हे प्रभु॥

तुझा दास ऐसा म्हणती लोकपाळ
जोग गाथा 3306

कथनी जैसी करनी जिसकी

कथनी जैसी करनी जिसकी,
चरण-वन्दना करूँ मैं उसकी।
आँगन उसका स्वयं बुहारूँ,
करूँ चाव से दासता उसकी॥

सेवक बनकर हाथ जोड़कर
सम्मुख उसके खड़ा रहूँ मैं।
तुका कहे, जिसके मन में प्रभु,
चरणों से उसके प्रीत करूँ मैं॥

बोले तैसा चाले
जोग गाथा, क्षेपक अभंग 296